ॐ

ज्ञानामृत

संकलनकर्ता

पूज्य भाईश्री शशीभाई

प्रकाशक

श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट

भावनगर

▯ प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :
वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट / श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट
५८०, जूनी माणेकवाड़ी, भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) ४२३२०७ / २१५१००५
▯ गुरु गौरव
श्री कुन्दकुन्दकहान जैन साहित्य केन्द्र,
पूज्य सोगानीजी मार्ग, सोनगढ़
▯ श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान जैन ट्रस्ट
विमलांचल, हरिनगर, अलीगढ़
फोन : (०५७१) ४१००१०/११/१२
▯ श्री खीमजीभाई गंगर (मुंबई) : (०२२) २६१६१५९१
श्री डोलरभाई हेमाणी (कोलकाटा) : (०३३) २४७५२६९७
अमी अग्रवाल, (अहमदाबाद) : (०७९) R-२५४५०४९२,
९३७७१४८९६३

* प्रथमावृत्ति : प्रत-५०००, वि. सं. २०३९,
* द्वितीयावृत्ति : प्रत-३०००, वि. सं. २०४०
* तृतीयावृत्ति : प्रत-१०००, वि. सं. २०५७
* चतुर्थावृत्ति : प्रत-५००, वि. सं. २०६०,
* पाँचवींआवृत्ति : प्रत-१०००, वि.सं. २०६१
* छठवींआवृत्ति : प्रत-५००, ३१-१२-०७, कुंदकुंदाचार्य आचार्य पदवी दिन

पृष्ठ संख्या :- ८ + १०४ = ११२
मूल्य : १०/-

टाईप सेटिंग :
पूजा इम्प्रेशन्स
प्लोट नं. १९२४-बी,
६, शान्तिनाथ बंगलोझ
शशीप्रभु मार्ग, रुपाणी सर्कल के पास
भावनगर-३६४००१
फोन : (०२७८) २५६१७४९

मुद्रक :
भगवती ऑफसेट
१५/सी, बंसीधर मिल कंपाउन्ड
बारडोलपूरा,
अहमदाबाद
फोन : ९८२५३२६२०२

प्रकाशकीय निवेदन
(छठवीं आवृत्ति)

यह `**ज्ञानामृत**' का हिन्दी संस्करण, छठवीं आवृत्ति मुमुक्षुओंके समक्ष रखते हुए हमें हर्ष हो रहा है; आत्मज्ञ सत्पुरुष `श्रीमद् राजचंद्रजी'के, इस प्रकारके वचनामृतोंके संकलनमें यह विशिष्टता है कि, मुमुक्षुकी भूमिकामें हो ऐसे जीवोंको सम्यक्दर्शनादि सत्धर्मकी प्राप्ति हेतु `मार्गदर्शन' (Guide line) मिले, ऐसा खास विषय, `श्रीमद्जी'के बड़े (वचनामृतके) ग्रंथमेंसे अलग छाँटकर इसमें संकलित किया है, यानी कि इस ग्रंथमें उपरोक्त दृष्टिकोणकी प्रधानतासे ही `श्रीमद्जी'के वचनोंका संकलन किया गया है। अतएव यह ग्रंथ मुमुक्षुजीवोंको प्रयोजनमें ज़रूर उपयोगी होगा ऐसी आशा है। यद्यपि `श्रीमद्जी'के वचनोंकी मौलिकता, अनुभवगंभीरता, मध्यस्थता आदि अति प्रसिद्ध है ही, तथापि स्वलक्ष्यपूर्वक विचारणा करनेवाले जीवको जो मार्गदर्शन उसमेंसे मिलता है, यह अनुभव करने जैसा है। उनकी लेखनीकी शैलीकी विशिष्टतामें परलक्ष्यसे चलती विचारमालाको स्वलक्ष्य प्रति झुकनेमें निमित्तभूत हो, ऐसी अचूकताका प्रकार रहा है।

परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री `कानजीस्वामी'की

कृपा दृष्टिसे हमारे इस ट्रस्टका जन्म हुआ है और `गुरुदेवश्री'की छत्रछायामें और बादमें उनके परम भक्त पूज्य भाईश्री `शशीभाई'की छत्रछायामें सत् साहित्यके प्रचार-प्रसारकी वृद्धि हुई। पूज्य `भाईश्री'का हमारे मुमुक्षु समाज पर इसलिये उपकार है क्योंकि उन्होंने यह संकलन करके मुमुक्षुओंका परम प्रयोजनभूत विषय पर ध्यान खींचा। ज्ञानियोंकी निर्मल प्रज्ञाके उपहाररूप यह संकलन सच्चे मुमुक्षुको प्रयोजनभूत विषय पर लक्ष्य खींचनेकी दिशामें अवश्य अमृत फल देगा, ऐसा लगता है।

इस छोटेसे ग्रंथके सुंदर टाईप सेटिंग-कार्यके लिये पूजा इम्प्रेशन्स, भावनगर एवम् सुंदर मुद्रणके लिये भगवती ऑफसेट, अहमदाबादके हम आभारी हैं।

इस ग्रंथके प्रकाशन कार्यमें प्राप्त दानराशिका विवरण अन्यत्र दिया है। उन महानुभवोंके हम आभारी हैं।

दि. ३१-१२-२००७
(कुंदकुंदाचार्य आचार्य पदवी दिन)

ट्रस्टीगण
श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट
भावनगर

दान राशि

श्रीमति चंद्रिकाबहन शशीकान्तभाई शेठ, भावनगर ५,०००/-

उपोद्घात

आत्मज्ञ सत्पुरुष श्रीमद् `राजचंद्रजी'के नामसे सांप्रत मुमुक्षु समाज सुपरिचित है। गृहस्थावस्थामें होते हुए, जिनको पूर्व संस्कारके बलसे बचपनसे ही जातिस्मरण (पूर्वभवकी स्मृति) का ज्ञान उपलब्ध हुआ था और सोलह-सत्रह वर्षकी उम्रमें ही जिनको आत्म-स्वरूपकी विचारणा जागृत हुई थी, और उस समयमें उन्हें कोई भी प्रत्यक्ष आत्मज्ञानीका योगरूप सत्संग नहीं मिला था, तदपि स्वयंके अंतरशोधनरूप पुरुषार्थ द्वारा अनन्त भवभ्रमणका छेदक ऐसा सम्यक्दर्शन और निर्मल स्वानुभूतिरूप आत्मज्ञानको उन्होंने सिर्फ चौबीस वर्षकी उम्रमें ही प्राप्त किया था। चौंतीस वर्षके आयुकाल दरमियान अनेक मुमुक्षु उनके परिचयमें आये थे; उन सब मुमुक्षुओंको लिखे गये पत्रोंमें स्वानुभवपूर्वक मुमुक्षु-कक्षाके जीवोंको मोक्षमार्ग-प्राप्तिके हेतुसे, विविध प्रकारके मार्गदर्शन मिले ऐसे बोधवचन लिखे गये थे। यही बोधवचनोंका संग्रह मुमुक्षु जीवोंके उपयोगमें आ सके ऐसा इस **"ज्ञानामृत"** ग्रंथका उद्देश्य है।

वर्तमानमें अलौकिक पुण्ययोगसे परम पूज्य परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री `कानजीस्वामी'का मुमुक्षु समाज पर अनुपम-अमाप उपकार वर्तता है। उन्होंने अपनी निर्मल स्वानुभूति द्वारा निरंतर शुद्धात्माका स्वरूप और तदाश्रित मोक्षमार्गको दिखाया है। कोई भी शास्त्रका कोई भी अधिकार चलता हो, लेकिन "भगवान-आत्मा एक ही समयमें (वर्तमान समयमें, अभी) ज्ञान, आनंद आदि स्वभावसे परिपूर्ण, अभेद, अखंड

स्वरूप है"। इस प्रकारसे शुद्धात्मस्वरूपको बार-बार दिखाया है, जिसकी सातिशयवानीमें जागृत चैतन्यका अवर्णनीय रणकार है, जिसके द्वारा आत्मार्थी जीवोंको स्वरूप-रुचि जागृत होती है, पुष्टि मिलती है, और आत्मजीवन नवपल्लवित होता है, वह अवर्णनीय है, प्रत्यक्ष अनुभव करने योग्य है। पूज्य `गुरुदेव' अपने प्रवचनोंमें `श्रीमद्जी'के वचनोंका अनेक बार आधार देते थे और `श्रीमद्जी' एकावतारी थे - ऐसा समर्थन करते थे।

इस ग्रंथका विषय मुख्यतः मुमुक्षु-कक्षा के जीवोंको ध्यानमें रखकर लिखे हुए वचन हैं, इसलिये इसमें वचन-व्यवहारकी रसम उपदेशात्मक और आदेशात्मक है। प्रयोजनवश परमागमोंमें और ज्ञानियों द्वारा इस प्रकारकी कथनशैली होती है। इसमें "पर्यायका कर्तृत्व होता है" ऐसा थोड़ा भी शोचनीय नहीं है। प्रयोजनकी दृष्टिवाले जीव पर्यायविषयक बोधवचनोंको स्वलक्षसे अंतर मिलान हेतु अवगाहन करते हैं, जिससे अयथार्थता नहीं होवे, अथवा पर्यायके कर्तृत्वमें दृढ़ता नहीं होवे। पर्यायके कर्तृत्वका रस ही मूल मिथ्यात्व है, इस सिद्धांतको मुख्य रखकर ही अंतर-मिलान यथार्थरूपसे हो सकता है। उपदेशित वचनोंसे "ऐसा करते-करते हो जायेगा" यह कहनेका अभिप्राय नहीं होता। ऐसा अंतर-आशय ज्ञानियोंके वचन-गांभिर्यमें सहजरूपसे रहता है।

तद्उपरांत, कोई भी शुभराग, शुद्धपर्यायका कारण नहीं है और जीवकी प्रत्येक पर्याय स्वतंत्र है, अर्थात् पूर्व पर्याय भी उत्तर पर्यायका निश्चय कारण नहीं है, यह सिद्धांत अखंड है, तदपि मोक्षमार्गका प्रवेशद्वाररूप सम्यक्दर्शन प्राप्त

करनेवाले जीवकी यथार्थ योग्यता हुए बिना मोक्षमार्ग शुरू नहीं होता, अर्थात् स्वानुभवरूप स्वसंवेदनकी उपलब्धि नहीं होती, ऐसा निर्देश `श्रीमद्जी'के वचनमें है; जो मुमुक्षुजीवको निज प्रयोजनमें उपकारी है।

इसके अलावा सत्पुरुषकी पहचान, आत्मार्थीताके लक्षण, सत्संग और सत्पुरुष मिलनेके बाद भी, वह निष्फल होनेके कारण, अनुभवप्राप्तिमें बाधक होनेके कारण, अनुभवके योग्य यथार्थता, इत्यादि मुमुक्षु जीवको खास प्रयोजनभूत हो, ऐसा विषय अलग दिखानेका इस ग्रंथसंपादनका प्रयोजन है।

यद्यपि तत्त्वज्ञानके क्षेत्रमें प्रवेश किये हुए जीवोंकी योग्यता-कक्षा अनेक प्रकारकी होती हैं; और इसलिए उपदेश वचन भी विभिन्न कक्षाके योग्य होते हैं। ऐसा श्रीमद्जीके वचनोंका प्रकार है। और आत्मार्थी जीव कहीं भी रूक न जाये ऐसा मार्गदर्शन इसमेंसे मिलता है यह नि:संदेह है। क्षयोपशमज्ञान द्वारा बुद्धिमान जीव परम निश्चयके विषयको बुद्धिगम्य बनाता है लेकिन परलक्षके कारण यथार्थता होती नहीं, अतः वह ज्ञान सम्यक्ज्ञानरूप परिणामको प्राप्त नहीं कर सकता। स्वलक्ष और रुचि बिनाका क्षयोपशमज्ञान प्राय: अनर्थका कारण बनता है; यह अत्यंत ध्यान देने योग्य है। ऐसी अनेक प्रकारकी चेतावनी देकर सत्पुरुषोंने जीवोंको सावधान किया है। ऐसा `सत्पुरुषोंका योगबल जगतका कल्याण करे' ऐसी शुभकामना करता हूँ।

-संपादक

विषय सूची

विषय				पृष्ठ संख्या
१७ वें वर्ष पहले	....	....	....	१
१७ वाँ वर्ष	....	....	....	३
२० वाँ वर्ष	....	....	....	३
२१ वाँ वर्ष	....	....	....	५
२२ वाँ वर्ष	....	....	....	६
२३ वाँ वर्ष	....	....	....	८
२४ वाँ वर्ष	....	....	....	११
२५ वाँ वर्ष	....	....	....	२०
२६ वाँ वर्ष	....	....	....	२६
२७ वाँ वर्ष	....	....	....	३२
२८ वाँ वर्ष	....	....	....	३८
२९ वाँ वर्ष	....	....	....	५३
३० वाँ वर्ष	....	....	....	६६
३१ वाँ वर्ष	....	....	....	७४
३२ वाँ वर्ष	....	....	....	७६
३३ वाँ वर्ष	....	....	....	७८
३४ वाँ वर्ष	....	....	....	८१
उपदेशनोंध	....	....	....	८२
उपदेशछाया	....	....	....	८३
व्याख्यानसार-१	....	....	....	८६
व्याख्यानसार-२	....	....	....	८८
आभ्यंतर-परिणामावलोकन	....	....	....	९०

ॐ

।। नमः सिद्धेभ्य ।।

ज्ञानामृत

१७वें वर्षसे पहले

पुष्पमाला

१५. तू चाहे जिस धर्मको मानता हो, मुझे उसका पक्षपात नहीं है। मात्र कहनेका तात्पर्य यह है कि जिस मार्गसे संसारमलका नाश हो, उस भक्ति, उस धर्म और उस सदाचारका तू सेवन कर।

५१. जिंदगी छोटी है और जंजाल लम्बा है; इसलिये जंजाल कम कर, तो सुखरूपसे जिंदगी लंबी लगेगी।

५२. स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, लक्ष्मी इत्यादि सभी सुख तेरे घरमें हों तो भी इन सुखोंमें गौणतासे दुःख रहा हुआ है, ऐसा मानकर आजके दिनमें प्रवेश कर।

५३. पवित्रताका मूल सदाचार है।

८०. व्यवहारका नियम रख और अवकाशमें

संसारकी निवृत्ति खोज़।

१०२. सरलता यह धर्मका बीजस्वरूप है। प्रज्ञापूर्वक सरलताका सेवन किया गया हो तो आजका दिन सर्वोत्तम है।

बोधवचन

२७. क्षणिक सुख पर लुब्ध नहीं होना।

६०. प्रमाद ही भय है।

८९. दूसरेको उपदेश देनेका लक्ष्य है, इसकी अपेक्षा निजधर्ममें अधिक लक्ष्य देना।

९०. कथनकी अपेक्षा मंथन पर अधिक ध्यान देना।

१०८. स्वद्रव्य और अन्य द्रव्यको भिन्न-भिन्न देखें।

१०९. स्वद्रव्यके रक्षक शीघ्र हों।

११०. स्वद्रव्यके व्यापक शीघ्र हों।

१११. स्वद्रव्यके धारक शीघ्र हों।

११२. स्वद्रव्यके रमक शीघ्र हों।

११३. स्वद्रव्यके ग्राहक शीघ्र हों।

११४. स्वद्रव्यकी रक्षकता पर ध्यान रखें (दें)।

११५. परद्रव्यकी धारकता शीघ्र छोड़ें।

११६. परद्रव्यकी रमणता शीघ्र छोड़ें।

११७. परद्रव्यकी ग्राहकता शीघ्र छोड़ें।

१७वाँ वर्ष

हुँ कोण छुं ? क्यांथी थयो ?
शुं स्वरूप छे मारुं खरुं ?
कोना संबंधे वलगणा छे ? राखुं के ए परिहरुं ?
एना विचार विवेकपूर्वक शांत भावे जो कर्या,
तो सर्व आत्मिक ज्ञाननां सिद्धांततत्त्व अनुभव्यां।

२० वाँ वर्ष

महानीति

८. संसारकी उपाधिसे यथासंभव विरक्त रहना।
११ तत्त्वधर्मको सर्वज्ञतासे प्रणीत करना।
३१. स्वादिष्ट भोजन नहीं लूँ।
३२. सुगंधी द्रव्यका उपयोग नहीं करूँ।
१३३. आजीविकाके लिये धर्मका उपदेश नहीं करूँ।
१३७. सत्य वस्तुका खंडन नहीं करूँ।
१३९. तत्त्वका आराधन करते हुए लोकनिंदासे नहीं डरूँ।
१४०. तत्त्व देते हुए माया नहीं करूँ।
१६०. झूठा तौल नहीं तौलूँ।
१६१. झूठी गवाही नहीं दूँ।
१६२. झूठी सौगन्ध नहीं खाऊँ।
१६९. गुरुका गुरु नहीं बनूँ।
१७२. अकरणीय व्यापार नहीं करूँ।

१७३. गुणहीन वक्तृत्वका सेवन नहीं करूँ।
१७६. अपने मिथ्या तर्कको उत्तेजन नहीं दूँ।
२५२. गुरुके उपदेशका भंग नहीं करूँ ।
२५३. गुरुका अविनय नहीं करूँ।
२५४. गुरुके आसन पर नहीं बैठूँ।
२५६. उससे शुक्लहृदयसे तत्त्वज्ञानकी वृद्धि करूँ।
२९३. मनके आनन्दकी अपेक्षा आत्मानन्दको चाहूँ।
३०१. न्यायविरुद्ध कृत्य नहीं करूँ।
३०७. बुरे मण्डलमें नहीं जाऊँ।
४६३. किसीके उपकारका लोप नहीं करूँ।
५०४. धैर्यको नहीं छोड़ना।
५२४. शास्त्रकी आशातना नहीं करूँ।
५२५. उसी प्रकार गुरु आदिकी भी।
५६६. वात्सल्यसे वैरीको भी वश करूँ।
६१०. सद्गुणका अनुकरण करूँ।
६३४. मानार्थ कृत्य नहीं करूँ।
६३५. कीर्तिके लिये पुण्य नहीं करूँ।
६८३. आजीविकाके लिये सामान्य पाप करते हुए भी डरता रहूँगा।

वचनामृत

३. किसीका भी समागम करना योग्य नहीं है, फिर भी जब तक वैसी दशा न हो तब तक सत्पुरुषका

समागम अवश्य करना योग्य है।

१०. हजारों उपदेश - वचन और कथन सुननेकी अपेक्षा उनमेंसे थोड़े भी वचनोंका विचार करना विशेष कल्याणकारी है।

१४. पठन करनेकी अपेक्षा मनन करनेकी ओर अधिक ध्यान दीजिये।

२०. राग नहीं करना, करना तो सत्पुरुषसे करना; द्वेष नहीं करना, करना तो कुशीलसे करना।

२१. अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्र और अनंतवीर्यसे अभिन्न ऐसे आत्माका एक पल भी विचार करें।

२९. यथार्थ वचन ग्रहण करनेमें दंभ न रखियेगा या देनेवालेके उपकारका लोप न कीजियेगा।

३२. निर्मल अंतःकरणसे आत्माका विचार करना योग्य है।

७१. एक निष्ठासे ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन करनेसे तत्त्वज्ञान प्राप्त होता है।

२१ वाँ वर्ष

पत्रांक नंबर ४०

विशालबुद्धि, मध्यस्थता, सरलता और जितेन्द्रियता इतने गुण जिस आत्मामें हों, वह तत्त्व पानेके लिये उत्तम

पात्र है।

अनंत जन्ममरण कर चुकनेवाले इस आत्माकी करुणा वैसे अधिकारीको उत्पन्न होती है और वही कर्ममुक्त होनेका अभिलाषी कहा जा सकता है। वही पुरुष यथार्थ पदार्थको यथार्थ स्वरूपसे समझकर मुक्त होनेके पुरुषार्थमें लग जाता है।

जो आत्मा मुक्त हुए हैं वे आत्मा कुछ स्वच्छंदवर्तनसे मुक्त नहीं हुए हैं, परन्तु आप्त पुरुष द्वारा उपदिष्ट मार्गके प्रबल अवलंबनसे मुक्त हुए हैं।

२२ वाँ वर्ष

पत्रांक-४७

"धर्म" यह वस्तु बहुत गुप्त रही है। यह बाह्य शोधनसे मिलनेवाली नहीं है। अपूर्व अन्तःशोधनसे यह प्राप्त होती है। यह अन्तःशोधन कोई एक महाभाग्य सद्गुरुके अनुग्रहसे पाता है।

आपके विचारोंको सुन्दर श्रेणीमें आये हुए देखकर मेरे अन्तःकरणने जो भाव उत्पन्न किया है उसे यहाँ बतानेसे सकारण रुक जाता हूँ।

स्याद्वाद शैलीसे यह बात भी मान्य है कि जो होनेवाला है वह बदलनेवाला नहीं है और जो बदलनेवाला है वह होनेवाला नहीं है। तो फिर धर्मप्रयत्नमें, आत्महितमें अन्य उपाधिके आधीन होकर प्रमाद क्यों करना ? ऐसा

है फिर भी देश, काल, पात्र और भाव देखने चाहिये।

पत्रांक-४८

१. जिसे धर्मसंबंधी कुछ भी बोध हुआ है, और जिसे कमानेकी जरूरत नहीं है, उसे उपाधि करके कमानेका प्रयत्न नहीं करना चाहिये।

३. उपजीवन सुखसे चल सके ऐसा होनेपर भी जिसका मन लक्ष्मीके लिये बेचैन रहता हो वह पहले उसकी वृद्धि करनेका कारण अपने आपको पूछे।

पत्रांक-५२

यथासम्भव आत्माको पहचाननेकी ओर ध्यान दे यही प्रार्थना है।

पत्रांक-६२

परमात्माका ध्यान करनेसे परमात्मा हुआ जाता है। परन्तु आत्मा उस ध्यानको सत्पुरुषके चरणकमलकी विनयोपासनाके बिना प्राप्त नहीं कर सकता, यह निर्ग्रंथ भगवानका सर्वोत्कृष्ट वचनामृत है।

पत्रांक-७६

दूसरा कुछ मत खोज, मात्र एक सत्पुरुषको खोजकर उसके चरणकमलमें सर्वभाव अर्पण करके प्रवृत्ति करता रह। फिर यदि मोक्ष न मिले तो मुझसे लेना।

सत्पुरुष वही है कि जो रात दिन आत्माके उपयागमें है, जिसका कथन शास्त्रमें नहीं मिलता, सुननेमें नहीं आता,

फिर भी अनुभवमें आ सकता है; अंतरंग स्पृहारहित जिसका गुप्त आचरण है।

२३ वाँ वर्ष

पत्रांक-८४

देहकी जितनी चिन्ता रखता है उतनी नहीं परन्तु उससे अनन्तगुनी चिंता आत्माकी रख, क्योंकि अनन्त भवोंको एक भवमें दूर करना है।

पत्रांक-८६

`जीवको परिभ्रमण करते हुए अनंतकाल हुआ, फिर भी उसकी निवृत्ति क्यों नहीं होती, और वह क्या करनेसे हो ?' इस वाक्यमें अनेक अर्थ समाये हुए हैं। उनका विचार किये बिना या दृढ़ विश्वाससे व्यथित हुए बिना मार्गके अंशका अल्प भान नहीं होता। दूसरे सब विकल्प दूर करके इस एक ऊपर लिखे हुए सत्पुरुषोंके वचनामृतका वारंवार विचार कर लें।

पत्रांक-१०५

महावीरके बोधका पात्र कौन ?

१. सत्पुरुषके चरणोंका इच्छुक,
२. सदैव सूक्ष्म बोधका अभिलाषी,
३. गुणपर प्रशस्त भाव रखनेवाला,
४. ब्रह्मव्रतमें प्रीतिमान,

५. जब स्वदोष देखे तब उसे दूर करनेका उपयोग रखनेवाला,

६. एक पल भी उपयोगपूर्वक बितानेवाला,

७. एकांतवासकी प्रशंसा करनेवाला,

८. तीर्थादि प्रवासका उमंगी,

९. आहार, विहार और निहारका नियम रखनेवाला,

१०. अपनी गुरुताको छिपानेवाला,

ऐसा कोई भी पुरुष महावीरके बोधका पात्र है, सम्यग्दशाका पात्र है। पहले जैसा एक भी नहीं है।

पत्रांक-१०८

हे जीव ! तू भ्रममें मत पड़, तुझे हितकी बात कहता हूँ।

अंतरमें सुख है, बाहर खोजनेसे नहीं मिलेगा।

अंतरका सुख अंतरकी समश्रेणीमें है, उसमें स्थिति होनेके लिये बाह्य पदार्थोंका विस्मरण कर, आश्चर्य भूल।

पत्रांक-१३३

रात-दिन एक परमार्थ विषयका ही मनन रहता है। आहार भी यही है, निद्रा भी यही है, शयन भी यही है, स्वप्न भी यही है, भय भी यही है, भोग भी यही है, परिग्रह भी यही है, चलना भी यही है, आसन भी यही है। अधिक क्या कहना ? हाड़, मांस और उसकी

मज्जा सभी इसी एक ही रंगमें रंगे हुए हैं। एक रोम भी मानो इसीका ही विचार करता है, और उसके कारण न कुछ देखना भाता है, न कुछ सूँघना भाता है, न कुछ सुनना भाता है, न कुछ चखना भाता है कि न कुछ छूना भाता है, न बोलना भाता है कि न मौन रहना भाता है, न बैठना भाता है कि न उठना भाता है, न सोना भाता है कि न जागना भाता है, न खाना भाता है कि न भूखे रहना भाता है, न असंग भाता है कि न संग भाता है, न लक्ष्मी भाती है कि न अलक्ष्मी भाती है ऐसा है; तथापि उसके प्रति आशा निराशा कुछ भी उदित होती मालूम नहीं होती। वह हो तो भी ठीक और न हो तो भी ठीक, यह कुछ दुःखका कारण नहीं है। दुःखका कारण मात्र विषमात्मा है, और वह यदि सम है तो सब सुख ही है। इस वृत्तिके कारण समाधि रहती है।

पत्रांक-१४३

२. सभी प्रकारकी अभिलाषाकी निवृत्ति करते रहें।

५. किसी एक सत्पुरुषको खोजे, और उसके चाहे जैसे वचनोंमें भी श्रद्धा रखे।

पत्रांक-१५७

दैनंदिनी

१. नाना-प्रकारका मोह क्षीण हो जानेसे आत्माकी

दृष्टि अपने गुणसे उत्पन्न होनेवाले सुखकी ओर जाती है, और फिर उसे प्राप्त करनेका वह प्रयत्न करती है। यही दृष्टि उसे उसकी सिद्धि देती है।

१६. दृष्टि ऐसी स्वच्छ करें कि जिसमें सूक्ष्मसे सूक्ष्म दोष भी दिखायी दे सकें; और दिखायी देनेसे उनका क्षय हो सके।

२४ वाँ वर्ष

पत्रांक-१६६

सत्पुरुषके एक-एक वाक्यमें, एक-एक शब्दमें अनंत आगम निहित हैं, यह बात कैसे होगी ?

१. मायिक सुखकी सर्व प्रकारकी वांछा चाहे जब भी छोड़े बिना छुटकारा होनेवाला नहीं है, तो जबसे इस वाक्यका श्रवण किया, तभीसे उस क्रमका अभ्यास करना योग्य ही है, ऐसा समझें।

३. अनादि कालके परिभ्रमणमें अनंतवार शास्त्रश्रवण, अनंतवार विद्याभ्यास, अनंतवार जिनदीक्षा और अनंतवार आचार्यत्व प्राप्त हुआ है। मात्र `सत्' मिला नहीं, `सत्' सुना नहीं, और `सत्'की श्रद्धा की नहीं और इसके मिलने, सुनने और श्रद्धा करनेपर ही छुटकारेकी गूँज आत्मामें उठेगी।

४. मोक्षका मार्ग बाहर नहीं, परन्तु आत्मामें है।

मार्गको प्राप्त पुरुष मार्गको प्राप्त करायेगा।

५. मार्ग दो अक्षरोंमें निहित है और अनादि कालसे इतना सब करनेपर भी क्यों प्राप्त नहीं हुआ, इसका विचार करें।

पत्रांक-१७६

जीवके संसार परिभ्रमणके जो जो कारण हैं, उनमें मुख्य स्वयं जिस ज्ञानके लिये शंकित है, उस ज्ञानका उपदेश करना, प्रगटमें उस मार्गकी रक्षा करना, हृदयमें उसके लिये चलविचलता होते हुए भी अपने श्रद्धालुओंको उसी मार्गके यथायोग्य होनेका ही उपदेश देना, यह सबसे बड़ा कारण है।

पत्रांक-१८३

सर्व प्रकारकी क्रियाका, योगका, जपका, तपका और इसके सिवाय अन्य प्रकारका लक्ष्य ऐसा रखिये कि यह सब आत्माको छुड़ानेके लिये हैं; बन्धनके लिये नहीं हैं। जिनसे बन्धन हो वे सब (क्रियासे लेकर समस्त योगादि तक) त्याज्य हैं।

पत्रांक-१९२

व्यवहारचिंताका वेदन अन्तरसे कम करना, यह मार्गप्राप्तिका एक साधन है।

पत्रांक-१९४

जो निरंतर भाव-अप्रतिबद्धतासे विचरते हैं ऐसे

ज्ञानीपुरुषके चरणारविंदके प्रति अचल प्रेम हुए बिना और सम्यक्प्रतीति आये बिना सत्स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, और आने पर अवश्य वह मुमुक्षु, जिसके चरणारविंदकी उसने सेवा की है, उसकी दशाको पाता है। सर्व ज्ञानियोंने इस मार्गका सेवन किया है, सेवन करते हैं और सेवन करेंगे। ज्ञानप्राप्ति इससे हमें हुई थी, वर्तमानमें इसी मार्गसे होती है और अनागतकालमें भी ज्ञानप्राप्तिका यही मार्ग है। सर्व शास्त्रोंका बोध-लक्ष्य देखा जाये तो यही है। और जो कोई भी प्राणी छूटना चाहता है उसे अखंड वृत्तिसे इसी मार्गका आराधन करना चाहिये। इस मार्गका आराधन किये बिना जीवने अनादि कालसे परिभ्रमण किया है। जब तक जीवको स्वच्छंदरूपी अंधत्व है, तब तक इस मार्गका दर्शन नहीं होता। (अंधत्व दूर होनेके लिये) जीवको इस मार्गका विचार करना चाहिये, दृढ़ मोक्षेच्छा करनी चाहिये; इस विचारमें अप्रमत्त रहना चाहिये, तो मार्गकी प्राप्ति होकर अंधत्व दूर होता है, यह निःशंक मानें। अनादिकालसे जीव उलटे मार्गपर चला है। यद्यपि उसने जप, तप, शास्त्राध्ययन इत्यादि अनंत बार किया है; तथापि जो कुछ भी अवश्य करने योग्य था, वह उसने किया नहीं है; जो हमने पहले ही बताया है।

पत्रांक-१९५

जिसे मार्गकी इच्छा उत्पन्न हुई है, उसे सब

विकल्पोंको छोड़कर इस एक विकल्पको वारंवार स्मरण करना आवश्यक है-

"अनन्तकालसे जीवका परिभ्रमण हो रहा है, फिर भी उसकी निवृत्ति क्यों नहीं होती ? और वह क्या करनेसे हो ?"

इस वाक्यमें अनंत अर्थ समाया हुआ है; और इस वाक्यमें कही हुई चिंतना किये बिना, उसके लिये दृढ़ होकर तरसे बिना मार्गकी दिशाका भी अल्प भान नहीं होता; पूर्वमें हुआ नहीं, और भविष्यकालमें भी नहीं होगा। हमने तो ऐसा जाना है। इसलिये आप सबको यही खोजना है। उसके बाद दूसरा क्या जानना ? वह मालूम होता है।

पत्रांक-१९८

दूसरी सभी प्रवृत्तियोंकी अपेक्षा जीवको योग्यता प्राप्त हो ऐसा विचार करना योग्य है; और उसका मुख्य साधन सर्व प्रकारके कामभोगसे वैराग्यसहित सत्संग है।

सत्संग (समवयस्क पुरुषोंका, समगुणी पुरुषोंका योग) में, जिसे सत्का साक्षात्कार है ऐसे पुरुषके वचनोंका परिशीलन करना कि जिससे कालक्रमसे सत्की प्राप्ति होती है।

जीव अपनी कल्पनासे किसी भी प्रकारसे सत्को प्राप्त नहीं कर सकता। सजीवनमूर्तिके प्राप्त होनेपर ही

सत् प्राप्त होता है, सत् समझमें आता है, सत्का मार्ग मिलता है और सत्पर ध्यान आता है। सजीवनमूर्तिके लक्षके बिना जो कुछ भी किया जाता है, वह सब जीवके लिये बन्धन है। यह मेरा हार्दिक अभिमत है।

पत्रांक-२००

वचनावली

१. जीव स्वयंको भूल गया है, और इसलिये उसे सत्सुखका वियोग है, ऐसा सर्व धर्मसम्मत कथन है।

२. स्वयंको भूल जानेरूप अज्ञानका नाश ज्ञान मिलनेसे होता है, ऐसा निःशंक मानना।

३. ज्ञानकी प्राप्ति ज्ञानीके पाससे होनी चाहिये। यह स्वाभाविकरूपसे समझमें आता है, फिर भी जीव लोकलज्जा आदि कारणोंसे अज्ञानीका आश्रय नहीं छोड़ता, यही अनंतानुबंधी कषायका मूल है।

४. जो ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा करता है, उसे ज्ञानीकी इच्छानुसार चलना चाहिये, ऐसा जिनागम आदि सभी शास्त्र कहते हैं। अपनी इच्छानुसार चलता हुआ जीव अनादिकालसे भटक रहा है।

५. जब तक प्रत्यक्ष ज्ञानीकी इच्छानुसार, अर्थात् आज्ञानुसार न चला जाये, तब तक अज्ञानकी निवृत्ति होना संभव नहीं है।

६. ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन वह कर सकता है कि जो एकनिष्ठासे, तन, मन और धनकी आसक्तिका त्याग करके उसकी भक्तिमें जुट जाये।

७. यद्यपि ज्ञानी भक्तिकी इच्छा नहीं करते, परन्तु मोक्षाभिलाषीको वह किये बिना उपदेश परिणमित नहीं होता, और मनन तथा निदिध्यासन आदिका हेतु नहीं होता; इसलिये मुमुक्षुको ज्ञानीकी भक्ति अवश्य करनी चाहिये ऐसा सत्पुरुषोंने कहा है।

८. इसमें कही हुई बात सब शास्त्रोंको मान्य है।

९. ऋषभदेवजीने अट्ठानवें पुत्रोंको त्वरासे मोक्ष होनेका यही उपदेश किया था।

१०. परीक्षित राजाको शुकदेवजीने यही उपदेश किया है।

११. अनंत काल तक जीव स्वच्छंदसे चलकर परिश्रम करे तो भी अपने आप ज्ञान प्राप्त नहीं करता; परन्तु ज्ञानीकी आज्ञाका आराधक अन्तर्मुहूर्तमें भी केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है।

१२. शास्त्रमें कही हुई आज्ञाएँ परोक्ष हैं और वे जीवको अधिकारी होनेके लिये कही हैं; मोक्ष-प्राप्तिके लिये ज्ञानीकी प्रत्यक्ष आज्ञाका आराधन करना चाहिये।

१३. यह ज्ञानमार्गकी श्रेणि कही, इसे प्राप्त किये

बिना दूसरे मार्गसे मोक्ष नहीं है।

१४. इस गुप्त तत्त्वका जो आराधन करता है, वह प्रत्यक्ष अमृतको पाकर अभय होता है।

पत्रांक-२३२

`लाचार होकर' करना चाहिये, और वह भी प्रारब्धवशात् निःस्पृह बुद्धिसे, ऐसे व्यवहारको योग्य व्यवहार मानिये।

पत्रांक-२३६

योग्यता ज्ञान-प्राप्तिके लिये अति बलवान कारण है।

पत्रांक-२४१

जिसे लगी है, उसीको लगी है और उसीने जानी है; वही ``पी पी'' पुकारता है। यह ब्राह्मी वेदना कैसे कही जाय ? कि जहाँ वाणीका प्रवेश नहीं है। अधिक क्या कहना ? जिसे लगी है उसीको लगी है। उसीके चरणसंगसे लगती है; और जब लगती है तभी छुटकारा होता है। इसके बिना दूसरा सुगम मोक्षमार्ग है ही नहीं। तथापि कोई प्रयत्न नहीं करता! मोह बलवान है!

पत्रांक-२५४

`मुमुक्षुता' यह है कि सर्व प्रकारकी मोहासक्तिसे अकुलाकर एक मोक्षके लिये ही यत्न करना और `तीव्र मुमुक्षुता' यह है कि अनन्य प्रेमसे मोक्षके मार्गमें प्रतिक्षण

प्रवृत्ति करना।

स्वच्छंदकी जहाँ थोड़ी अथवा बहुत हानि हुई है, वहाँ उतनी बोधबीज योग्य भूमिका होती है।

कलियुग है, इसलिये क्षण भर भी वस्तु विचारके बिना नहीं रहना यह महात्माओंकी शिक्षा है।

पत्रांक-२६४

अनन्त काळथी आथड्यो, विना भान भगवान।
सेव्या नहि गुरु संतने, मूक्युं नहि अभिमान।
सन्त चरण आश्रय विना, साधन कर्यां अनेक।
पार न तेथी पामियो, ऊग्यो न अंश विवेक।

पत्रांक-२६५

यमनियम संजम आप कियो,
पुनि त्याग बिराग अथाग लह्यो।
वनवास लियो मुख मौन रह्यो,
दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।।१।।
मन पौन निरोध स्वबोध कियो,
हठजोग प्रयोग सु तार भयो।
जप भेद जपे तप त्यौंहि तपे,
उरसेंहि उदासी लही सबपें।।२।।
सब शास्त्रनके नय धारि हिये,
मत मंडन खंडन भेद लिये।

वह साधन बार अनन्त कियो,
तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।।३।।
अब क्यौं न बिचारत है मनसें,
कछु और रहा उन साधनसें ?।

पत्रांक-२६७

आ जीव ने आ देह एवो, भेद जो भास्यो नहीं, पचखाण कीधां त्यां सुधी, मोक्षार्थ ते भाख्यां नहीं।

पत्रांक-२७०

शास्त्रादिके ज्ञानसे निबटारा नहीं है परन्तु अनुभव ज्ञानसे निबटारा है।

पत्रांक-२७४

जगतमें अच्छा दिखानेके लिये मुमुक्षु कोई आचरण न करे, परन्तु जो अच्छा हो उसीका आचरण करे !

पत्रांक-२९२

जीवको अपनी इच्छासे किये हुए दोषको तीव्रतासे भोगना पड़ता है, इसलिये चाहे जिस संग-प्रसंगमें भी स्वेच्छासे अशुभभावसे प्रवृत्ति न करनी पड़े ऐसा करें।

पत्रांक-२९४

जीवके लिये स्वच्छंद बहुत बड़ा दोष है। यह जिसका दूर हो गया है उसे मार्गके क्रमकी प्राप्ति बहुत सुलभ है।

२५ वाँ वर्ष

पत्रांक-३११

शुद्ध निरंजन अलख अगोचर,
एहि ज साध्य सुहायो रे।
ज्ञानक्रिया अवलंबी फरस्यो,
अनुभव सिद्धि उपायो रे।।

पत्रांक-३२९

किसी भी कामके प्रसंगमें अधिक शोकमें पड़नेका अभ्यास कम कीजिये; ऐसा करना या होना यह ज्ञानीकी अवस्थामें प्रवेश करनेका द्वार है।

पत्रांक-३३०

अनेक बार ग्रन्थ पढ़नेकी चिंता नहीं, परन्तु किसी प्रकारसे उसका अनुप्रेक्षण दीर्घकाल तक रहा करे ऐसा करना योग्य है।

किसी भी प्रकारकी आकुलताके बिना वैराग्यभावनासे, वीतरागभावसे, ज्ञानीमें परमभक्तिभावसे सत्शास्त्र आदिका और सत्संगका परिचय करना अभी तो योग्य है।

पत्रांक-३३१

भ्रांतिवश सुखस्वरूप भासमान होते हैं ऐसे इन संसारी प्रसंगों एवं प्रकारोंमें जब तक जीवको प्रीति रहती है, तब तक जीवको अपने स्वरूपका भास होना असम्भव है, और सत्संगका माहात्म्य भी तथारूपतासे भासमान

होना असंभव है। जब तक यह संसारगत प्रीति असंसारगत प्रीतिको प्राप्त न हो तब तक अवश्य ही अप्रमत्तभावसे वारंवार पुरुषार्थको स्वीकार करना योग्य है। यह बात त्रिकालमें विसंवादरहित जानकर निष्कामभावसे लिखी है।

पत्रांक-३३२

आरंभ और परिग्रहका मोह ज्यों-ज्यों मिटता है, ज्यों-ज्यों तत्सम्बन्धी अपनेपनका अभिमान मंद-परिणामको प्राप्त होता है; त्यों-त्यों मुमुक्षुता बढ़ती जाती है। अनंत कालसे परिचित यह अभिमान प्रायः एकदम निवृत्त नहीं होता। इसलिये तन, मन, धन आदि जिनमें ममत्व रहता है उन्हें ज्ञानीको अर्पित किया जाता है; प्रायः ज्ञानी कुछ उन्हें ग्रहण नहीं करते, परन्तु उनमेंसे ममत्वको दूर करनेका ही उपदेश देते हैं; और करने योग्य भी यही है कि आरम्भ-परिग्रहको वारंवारके प्रसंगमें पुनः पुनः विचार करके उनमें ममत्व न होने दे; तब मुमुक्षुता निर्मल होती है।

पत्रांक़-३३७

जो जो प्राणी देह धारण करते हैं वे वे प्राणी उस देहका त्याग करते हैं, ऐसा हमें प्रत्यक्ष अनुभवसिद्ध दिखायी देता है; फिर भी अपना चित्त उस देहकी अनित्यताका विचार करके नित्य पदार्थके मार्गमें नहीं जाता, इस शोचनीय बातका वारंवार विचार करना योग्य

है।

पूर्वकर्मके अनुसार जो कुछ भी सुखदुःख प्राप्त हो, उसे समानभावसे वेदन करना, यह ज्ञानीकी सीख याद आनेसे लिखी है।

पत्रांक-३३९

कोई भी जीव परमार्थकी इच्छा करे और व्यावहारिक संगमें प्रीति रखे, और परमार्थ प्राप्त हो, ऐसा तो कभी हो ही नहीं सकता।

पत्रांक-३६३

अनंतकाल व्यवहार करनेमें व्यतीत किया है, तो फिर उसकी झंझटमें परमार्थका विसर्जन न किया जाये, ऐसी प्रवृत्ति करनेका जिसका निश्चय है, उसे वैसा होता है, ऐसा हम जानते हैं।

पत्रांक-३६८

ज्ञानीसे यदि किसी भी प्रकारसे धन आदिकी इच्छा रखी जाती है, तो जीवको दर्शनावरणीय कर्मका प्रतिबन्ध विशेष उत्पन्न होता है। प्रायः ज्ञानी, किसीको अपनेसे वैसा प्रतिबन्ध न हो, इस तरह प्रवृत्ति करते हैं।

पत्रांक-३७४

``चाहे जितनी विपत्तियाँ पड़ें, तथापि ज्ञानीसे सांसारिक फलकी इच्छा करना योग्य नहीं है।''

उदयमें आया हुआ अंतराय समपरिणामसे वेदन

करने योग्य है, विषमपरिणामसे वेदन करने योग्य नहीं है।

पत्रांक-३७५

जिनागम उपशमस्वरूप है। उपशमस्वरूप पुरुषोंने उपशमके लिये उसका प्ररूपण किया है, उपदेश किया है। यह उपशम आत्माके लिये है, अन्य किसी प्रयोजनके लिये नहीं है। आत्मार्थमें यदि उसका आराधन नहीं किया गया, तो उस जिनागमका श्रवण एवं अध्ययन निष्फलरूप है; यह बात हमें तो निःसंदेह यथार्थ लगती है।

दुःखकी निवृत्तिको सभी जीव चाहते हैं, और दुःखकी निवृत्ति, जिनसे दुःख उत्पन्न होता है ऐसे राग, द्वेष और अज्ञान आदि दोषोंकी निवृत्ति हुए बिना, होना संभव नहीं है। इन राग आदिकी निवृत्ति एक आत्मज्ञानके सिवाय दूसरे किसी प्रकारसे भूतकालमें हुई नहीं है, वर्तमानकालमें होती नहीं है, भविष्यकालमें हो नहीं सकती। ऐसा सर्व ज्ञानी पुरुषोंको भासित हुआ है। इसलिये वह आत्मज्ञान जीवके लिये प्रयोजनरूप है। उसका सर्वश्रेष्ठ उपाय सद्गुरुवचनका श्रवण करना या सत्शास्त्रका विचार करना है। जो कोई जीव दुःखकी निवृत्ति चाहता हो, जिसे दुःखसे सर्वथा मुक्ति पानी हो उसे इसी एक मार्गकी आराधना किये बिना अन्य दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिये जीवको सर्व प्रकारके मतमतांतरसे, कुलधर्मसे,

लोकसंज्ञारूप धर्मसे और ओघसंज्ञारूप धर्मसे उदासीन होकर एक आत्मविचार कर्तव्यरूप धर्मकी उपासना करना योग्य है।

एक बड़ी निश्चयकी बात तो मुमुक्षु जीवको यही करना योग्य है कि सत्संग जैसा कल्याणका कोई बलवान कारण नहीं है, और उस सत्संगमें निरन्तर प्रति समय निवास चाहना, असत्संगका प्रतिक्षण विपरिणाम विचारना, यह श्रेयरूप है। बहुत बहुत करके यह बात अनुभवमें लाने जैसी है।

पत्रांक-३८७

जीवको स्वस्वरूप जाने बिना छुटकारा नहीं है; तब तक यथायोग्य समाधि नहीं है। यह जाननेके लिये मुमुक्षुता और ज्ञानीकी पहचान उत्पन्न होने योग्य है। ज्ञानीको जो यथायोग्यरूपसे पहचानता है वह ज्ञानी हो जाता है-क्रमसे ज्ञानी हो जाता है।

आनन्दघनजीने एक स्थानपर एसा कहा है कि-

`जिन थई' `जिनने' जे आराधे, ते सही जिनवर होवे रे।

भृंगी ईलिकाने चटकावे, ते भृंगी जग जोवे रे ।

पत्रांक-४०३

जीवको धर्म अपनी कल्पनासे अथवा कल्पनाप्राप्त अन्य पुरुषसे श्रवण करने योग्य, मनन करने योग्य या

आराधने योग्य नहीं है। मात्र आत्मस्थिति है जिनकी ऐसे सत्पुरुषसे ही आत्मा अथवा आत्मधर्म श्रवण करने योग्य है, यावत् आराधने योग्य है।

पत्रांक-४१४

ज्ञानीपुरुषका योग होनेके बाद जो आत्मभावसे, स्वच्छंदतासे, कामनासे, रससे, ज्ञानीके वचनोंकी उपेक्षा करके, `अनुपयोगपरिणामी' होकर संसारका सेवन करता है, वह पुरुष तीर्थंकरके मार्गसे बाहर है, ऐसा कहनेका तीर्थंकरका आशय है।

पत्रांक-४१६

ज्ञानीपुरुषकी पहचान न होनेमें मुख्यतः जीवके तीन महान दोष जानते हैं। एक तो `मैं जानता हूँ,' `मैं समझता हूँ,' इस प्रकारका जो मान जीवको रहा करता है, वह मान। दूसरा, ज्ञानीपुरुषके प्रति रागकी अपेक्षा परिग्रहादिकमें विशेष राग। तीसरा, लोकभयके कारण, अपकीर्तिभयके कारण और अपमानभयके कारण ज्ञानीसे विमुख रहना, उनके प्रति जैसा विनयान्वित होना चाहिये वैसा न होना। ये तीन कारण जीवको ज्ञानीसे अनजान रखते हैं; ज्ञानीके विषयमें अपने समान कल्पना रहा करती है; अपनी कल्पनाके अनुसार ज्ञानीके विचारका, शास्त्रका तोलन किया जाता है; थोड़ा भी ग्रन्थसम्बन्धी वाचनादि ज्ञान मिलनेसे अनेक प्रकारसे उसे प्रदर्शित करनेकी

जीवको इच्छा रहा करती है। इत्यादि दोष उपर्युक्त तीन दोषोंमें समा जाते हैं, और इन तीनों दोषोंका उपादान कारण तो एक स्वच्छंद नामका महा दोष है। [आत्मार्थी जीवके लिये यह सब अगत्यका मार्गदशन है।]

२६ वाँ वर्ष

पत्रांक-४२२

शम, संवेगादि गुण उत्पन्न होनेपर अथवा वैराग्यविशेष एवं निष्पक्षता होनेपर, कषायादि क्षीण होनेपर, अथवा कुछ भी प्रज्ञाविशेषसे समझनेकी योग्यता होनेपर, जो सद्गुरुगमसे समझने योग्य अध्यात्म ग्रन्थ, तब तक प्रायः शस्त्र जैसे हैं, उन्हें अपनी कल्पनासे जैसे-तैसे पढ़कर, निश्चय करके, वैसा अंतर्भेद हुए विना अथवा दशा बदले बिना, विभाव दूर हुए बिना अपनेमें ज्ञानकी कल्पना करता है; और क्रिया तथा शुद्ध व्यवहाररहित होकर प्रवृत्ति करता है, ऐसा तीसरा प्रकार शुष्कअध्यात्मीका है।

इसलिये विचारवान जीव यह लक्ष रखकर, उपर्युक्त प्रवाहोंमें न बहते हुए यथाशक्ति वैराग्यादिकी आराधना अवश्य करके, सद्गुरुका योग प्राप्त करके, कषायादि दोषका छेदक और अज्ञानसे रहित होनेका सत्यमार्ग प्राप्त करे। मुमुक्षु जीवमें कथित शमादि गुण अवश्य सम्भव हैं; अथवा उन गुणोंके बिना मुमुक्षुता नहीं कही जा सकती।

नित्य ऐसा परिचय रखते हुए, उस-उस बातका श्रवण करते हुए, विचार करते हुए, पुनः पुनः पुरुषार्थ करते हुए वह मुमुक्षुता उत्पन्न होती है। वह मुमुक्षुता उत्पन्न होनेपर जीवको परमार्थमार्ग अवश्य समझमें आता है।

पत्रांक-४४९

कल्याणमें प्रतिबंधरूप जो-जो कारण हैं, उनका जीवको वारंवार विचार करना योग्य है; उन-उन कारणोंका वारंवार विचार करके दूर करना योग्य है; और इस मार्गका अनुसरण किये बिना कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती। मल, विक्षेप और अज्ञान ये जीवके अनादिके तीन दोष हैं। ज्ञानीपुरुषोंके वचनोंकी प्राप्ति होनेपर, उनका यथायोग्य विचार होनेसे अज्ञानकी निवृत्ति होती है। उस अज्ञानकी संतति बलवान होनेसे उसका रोध होनेके लिये और ज्ञानीपुरुषोंके वचनोंका यथायोग्य विचार होनेके लिये मल और विक्षेपको दूर करना योग्य है। सरलता, क्षमा, अपने दोष देखना, अल्पारम्भ, अल्पपरिग्रह इत्यादि मल मिटनेके साधन हैं। ज्ञानीपुरुषकी अत्यंत भक्ति विक्षेप मिटनेका साधन है।

अब ऐसा निश्चय करना योग्य है कि जिसे आत्मस्वरूप प्राप्त है, प्रगट है, उस पुरुषके बिना अन्य कोई उस आत्मस्वरूपको यथार्थ कहनेके योग्य नहीं है; और उस पुरुषसे आत्मा जाने बिना अन्य कोई कल्याणका

उपाय नहीं है। उस पुरुषसे आत्मा जाने बिना, आत्मा जाना है ऐसी कल्पनाका मुमुक्षु जीवको सर्वथा त्याग करना योग्य है। उस आत्मारूप पुरुषके सत्संगकी निरंतर कामना रखकर उदासीनतासे लोकधर्मसम्बन्धी और कर्मसम्बन्धी परिणामसे छूटा जा सके इस प्रकारसे व्यवहार करना। जिस व्यवहारके करनेमें जीवको अपनी महत्तादिकी इच्छा हो वह व्यवहार करना यथायोग्य नहीं है।

पत्रांक-४५४

यदि स्पष्ट प्रीतिसे संसार करनेकी इच्छा होती हो तो उस पुरुषने ज्ञानीके वचन सुने नहीं हैं; अथवा ज्ञानीपुरुषके दर्शन भी उसने किये नहीं है ऐसा तीर्थंकर कहते हैं।

जिसकी कमर टूट गई है, उसका प्रायः सारा बल परिक्षीणताको प्राप्त होता है। जिसे ज्ञानीपुरुषके वचनरूप लकड़ीका प्रहार हुआ है उस पुरुषमें उस प्रकारसे संसार सम्बन्धी बल होता है, ऐसा तीर्थंकर कहते हैं।

ज्ञानीपुरुषको देखनेके बाद स्त्रीको देखकर यदि राग उत्पन्न होता हो तो उसने ज्ञानीपुरुषको नहीं देखा, ऐसा आप समझें।

ज्ञानीपुरुषके वचन सुननेके बाद स्त्रीका सजीवन शरीर अजीवनरूपसे भासे बिना नहीं रहेगा।

धनादि सम्पत्ति वास्तवमें पृथ्वीका विकार भासित हुए बिना नहीं रहेगा।

ज्ञानीपुरुषके सिवाय उसका आत्मा और कहीं भी क्षणभर स्थायी होना नहीं चाहेगा।

इत्यादि वचनोंका पूर्वकालमें ज्ञानीपुरुष मार्गानुसारी पुरुषोंको बोध देते थे।

जिन्हें जानकर, सुनकर वे सरल जीव आत्मामें अवधारण करते थे।

प्राणत्याग जैसे प्रसंगमें भी वे उन वचनोंको अप्रधान न करने योग्य जानते थे, वर्तन करते थे।

संसारमें एकदम उदासीनता, परके अल्पगुणोंमें भी प्रीति, अपने अल्पदोषोंमें भी अत्यंत क्लेश, दोषके विलयमें अत्यन्त वीर्यका स्फुरना, ये बातें सत्संगमें केवल शरणागतरूपसे अखण्ड घ्यानमें रखने योग्य हैं। यथासम्भव निवृत्तिकाल, निवृत्तिक्षेत्र, निवृत्तिद्रव्य और निवृत्तिभावका सेवन कीजिये।

पत्रांक-४५९

परमार्थमार्गका लक्षण यह है कि अपरमार्थका सेवन करते हुए जीव सभी प्रकारसे सुख अथवा दुःखमें कायर हुआ करे। दुःखमें कायरता कदाचित् दूसरे जीवोंको भी हो सकती है, परन्तु संसारसुखकी प्राप्तिमें भी कायरता, उस सुखकी अरुचि, नीरसता परमार्थमार्गी पुरुषको होती

है।

जिस वस्तुका माहात्म्य दृष्टिमेंसे चला गया उस वस्तुके लिये अत्यंत क्लेश नहीं होता। संसारमें भ्रांतिसे जाना हुआ सुख परमार्थज्ञानसे भ्रांति ही भासित होता है, और जिसे भ्रांति भासित हुई है उसे फिर उसका माहात्म्य क्या लगेगा? ऐसी माहात्म्यदृष्टि परमार्थज्ञानीपुरुषके निश्चयवाले जीवको होती है।

पत्रांक-४६०

शारीरिक वेदनाको देहका धर्म मानकर और बाँधे हुए कर्मोंका फल जानकर सम्यक् प्रकारसे सहन करना योग्य है। बहुत बार शारीरिक वेदना विशेष बलवती होती है, उस समय उत्तम जीवोंको भी उपर्युक्त सम्यक्प्रकारसे स्थिर रहना कठिन होता है; तथापि हृदयमें वारंवार उस बातका विचार करते हुए और आत्माको नित्य, अछेद्य, अभेद्य, जरा, मरणादि धर्मसे रहित भाते हुए, विचार करते हुए, कितने ही प्रकारसे उस सम्यक्प्रकारका निश्चय आता है। महान पुरुषों द्वारा सहन किये हुए उपसर्ग तथा परिषह के प्रसंगोंकी जीवमें स्मृति करके, उसमें उनके रहे हुए अखंड निश्चयको वारंवार हृदयमें स्थिर करने योग्य जाननेसे जीवको वह सम्यक्परिणाम फलीभूत होता है, और वेदना, वेदनाके क्षयकालमें निवृत्त होनेपर, फिर वह वेदना किसी कर्मका कारण नहीं होती। व्याधिरहित

शरीर हो, उस समयमें यदि जीवने उससे अपनी भिन्नता जानकर, उसका अनित्यादि स्वरूप जानकर, उसके प्रति मोह, ममत्वादिका त्याग किया हो, तो यह महान श्रेय है; तथापि ऐसा न हुआ हो तो किसी भी व्याधिके उत्पन्न होनेपर, वैसी भावना करते हुए जीवको प्रायः निश्चल कर्मबंधन नहीं होता; और महाव्याधिके उत्पत्तिकालमें तो जीव देहके ममत्वका जरूर त्याग करके ज्ञानीपुरुषके मार्गकी विचारणाके अनुसार आचरण करे, यह सम्यक् उपाय है। यद्यपि देहका वैसा ममत्व त्याग करना अथवा कम करना, यह महादुष्कर बात है, तथापि जिसका वैसा करनेका निश्चय है, वह कभी-न-कभी फलीभूत होता है।

पत्रांक-४६६

५. पूर्वकालमें हुए अनन्त ज्ञानी यद्यपि महाज्ञानी हो गये हैं, परन्तु उससे जीवका कुछ दोष नहीं जाता; अर्थात् इस समय जीवमें मान हो तो पूर्वकालमें हुए ज्ञानी कहने नहीं आयेंगे; परन्तु हाल जो प्रत्यक्ष ज्ञानी विराजमान हों वे ही दोषको बतलाकर निकलवा सकते हैं। जैसे दूरके क्षीरसमुद्रसे यहाँके तृषातुरकी तृषा शांत नहीं होती, परन्तु एक मीठे पानीका कलश यहाँ हो तो उससे तृषा शांत होती है।

७. जीवको मुख्यमें मुख्य इस बातपर विशेष ध्यान देना योग्य है कि सत्संग हुआ हो तो सत्संगमें सुना

हुआ शिक्षाबोध परिणत होकर जीवमें उत्पन्न हुए कदाग्रहादि दोष तो सहजमें ही छूट जाने चाहिये, कि जिससे दूसरे जीवोंको सत्संगका अवर्णवाद बोलनेका मौका न मिले।

पत्रांक-४६७

ज्ञानीपुरुषकी चेष्टाकी कोई अगम्यता ही ऐसी है कि अधूरी अवस्थासे अथवा अधूरे निश्चयसे जीवके लिये विभ्रम और विकल्पका कारण होती है। परन्तु वास्तविक रूपमें तथा पूरा निश्चय होनेपर वह विभ्रम और विकल्प उत्पन्न होने योग्य नहीं हैं; इसलिए इस जीवको ज्ञानीपुरुषके प्रति अधूरा निश्चय है, यही इस जीवका दोष है।

२७ वाँ वर्ष

पत्रांक-४८३

जिस विद्यासे उपशम गुण प्रगट नहीं हुआ, विवेक नहीं आया अथवा समाधि नहीं हुई उस विद्याके विषयमें श्रेष्ठ जीवको आग्रह करना योग्य नहीं है।

पत्रांक-४९२

मुमुक्षुजीवको संसारकी प्रतिकूल दशाएँ प्राप्त होना, यह उसे संसारसे तरनेके समान है। अनंतकालसे अभ्यस्त

इस संसारका स्पष्ट विचार करनेका समय प्रतिकूल प्रसंगमें विशेष होता है, यह बात निश्चय करने योग्य है।

पत्रांक-४९५

मुझे ऐसा लगता है कि जीवको मूलरूपसे देखते हुए यदि मुमुक्षुता आयी हो तो नित्य प्रति उसका संसारबल घटता रहता है। संसारमें धनादि संपत्तिका घटना या न घटना अनियत है; परन्तु संसारके प्रति जीवकी जो भावना है वह मंद होती रहे, अनुक्रमसे नाश होनेयोग्य हो।

पत्रांक-४९६

जो मुमुक्षुजीव गृहस्थ व्यवहारमें प्रवृत्त हो, उसे तो अखंड नीतिका मूल प्रथम आत्मामें स्थापित करना चाहिये; नहीं तो उपदेशादिकी निष्फलता होती है।

द्रव्यादि उत्पन्न करने आदिमें सांगोपांग न्यायसम्पन्न रहना, इसका नाम नीति है। यह नीति छोड़ते हुए प्राण जानेकी दशा आनेपर त्याग और वैराग्य सच्चे स्वरूपमें प्रगट होते हैं; और उसी जीवको सत्पुरुषके वचनोंका तथा आज्ञाधर्मका अद्‌भुत सामर्थ्य, माहात्म्य और रहस्य समझमें आता है; और सभी वृत्तियोंके निजरूपसे प्रवृत्ति करनेका मार्ग स्पष्ट सिद्ध होता है।

जो जीव सत्पुरुषका निश्चय हुआ है ऐसा मानता

है, उसमें यदि उपर्युक्त नीतिका प्राबल्य न हो और कल्याणकी याचना करे तथा वार्ता करे, तो यह निश्चय मात्र सत्पुरुषको ठगनेके समान है। यद्यपि सत्पुरुष तो निराकांक्षी है इसलिये उनके लिये तो ठगे जाने जैसा कुछ है नहीं, परन्तु इस प्रकारसे प्रवृत्ति करनेवाला जीव अपराधयोग्य होता है। इस बातपर वारंवार आपको और आपके समागमकी इच्छा करनेवाले मुमुक्षुओंको ध्यान देना चाहिये। कठिन बात है, इसलिये नहीं हो सकती, यह कल्पना मुमुक्षुके लिये अहितकारी है और त्याज्य है।

पत्रांक-४९८

आत्माको संसारका स्वरूप कारागृह जैसा वारंवार क्षण-क्षणमें भासित हुआ करे, यह मुमुक्षुताका मुख्य लक्षण है। मूल बात तो यह है कि जीवको वैराग्य आनेपर भी जो उसकी अत्यन्त शिथिलता है-ढीलापन है-उसे दूर करते हुए उसे अत्यन्त कठिन लगता है, और चाहे जैसे भी प्रथम इसे ही दूर करना योग्य है।

पत्रांक-५०६

पदार्थका निर्णय करनेमें जीवको अन्तरायरूप उसकी अनादि विपर्यासभावको प्राप्त हुई बुद्धि है, जो व्यक्तरूपसे या अव्यक्तरूपसे विपर्यासभावसे पदार्थस्वरूपका निर्धार कर लेती है; उस विपर्यासबुद्धिका बल घटनेके लिये, यथावत् वस्तुस्वरूपके ज्ञानमें प्रवेश होनेके लिये, जीवको

वैराग्य और उपशम साधन कहे हैं।

पत्रांक-५१०

जिस प्रकारसे पुत्रादि सम्पत्तिमें इस जीवको मोह होता है, वह प्रकार सर्वथा नीरस और निन्दनीय है। जीव यदि जरा भी विचार करे तो यह बात स्पष्ट समझमें आने जैसी है कि इस जीवने किसीमें पुत्रत्वकी भावना करके अपना अहित करनेमें कोई कसर नहीं रखी, और किसीको पिता मानकर भी वैसा ही किया है, और कोई जीव अभी तक तो पिता पुत्र हो सका हो, ऐसा देखनेमें नहीं आया। सब कहते आये हैं कि इसका यह पुत्र अथवा इसका यह पिता है, परन्तु विचार करते हुए स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह बात किसी भी कालमें सम्भव नहीं है। अनुत्पन्न ऐसे इस जीवको पुत्ररूप मानना अथवा ऐसा मनवानेकी इच्छा रहना, यह सब जीवकी मूढ़ता है, और यह मूढ़ता किसी भी प्रकारसे सत्संगकी इच्छावाले जीवको करना योग्य नहीं है।

पत्रांक-५२२

सत्पुरुषका योग होनेके पश्चात् आत्मज्ञान कुछ दुर्लभ नहीं है। तथापि सत्पुरुषमें, उनके वचनोंमें, उन वचनोंके आशयमें, जब तक प्रीति भक्ति न हो तब तक जीवमें आत्मविचार भी उदय होने योग्य नहीं है; और जीवको सत्पुरुषका योग हुआ है, ऐसा सचमुच उस जीवको भासित

हुआ है, यों कहना भी कठिन है।

पत्रांक-५२५

जिससे विचारवान जीवका तो अवश्य कर्तव्य है कि यथासम्भव परभावके परिचित कार्यसे दूर रहना, निवृत्त होना। प्रायः विचारवान जीवको तो यही बुद्धि रहती हैं, तथापि किसी प्रारब्धवशात् परभावका परिचय प्रबलतासे उदयमें हो वहाँ निजपदबुद्धिमें स्थिर रहना विकट है, ऐसा मानकर नित्य निवृत्तबुद्धिकी विशेष भावना करनी, ऐसा महापुरुषोंने कहा है।

अल्पकालमें अव्याबाध स्थिति होनेके लिये तो अत्यंत पुरुषार्थ करके जीवको परपरिचयसे निवृत्त होना ही योग्य है। धीरे धीरे निवृत्त होनेके कारणों पर भार देनेकी अपेक्षा जिस प्रकार त्वरासे निवृत्ति हो वह विचार कर्तव्य है; और ऐसा करते हुए यदि असाता आदि आपत्तियोगका वेदन करना पड़ता हो तो उसका वेदन करके भी परपरिचयसे शीघ्रतः दूर होनेका उपाय करना योग्य है। इस बातका विस्मरण होने देना योग्य नहीं है।

पत्रांक-५२६

जीव यदि वहाँ भी वंचनाबुद्धिसे प्रवृत्ति करे तो कभी कल्याण नहीं हो सकता। वंचनाबुद्धि अर्थात् सत्संग, सद्गुरु आदिमें सच्चे आत्मभावसे जो माहात्म्यबुद्धि होना योग्य है, वह माहात्म्यबुद्धि नहीं और अपने आत्मामें

अज्ञानता ही रहती चली आयी है, इसलिये उसकी अल्पज्ञता, लघुता विचारकर अमाहात्म्यबुद्धि करनी चाहिये सो नहीं करना, तथा सत्संग, सद्गुरु आदिके योगमें अपनी अल्पज्ञता, लघुताको मान्य नहीं करना यह भी वंचनाबुद्धि है। वहाँ भी यदि जीव लघुता धारण न करे तो प्रत्यक्षरूपसे जीव भवपरिभ्रमणसे भयको प्राप्त नहीं होता, यही विचार करना योग्य है। जीवको यदि प्रथम यह लक्ष्य अधिक हो तो सब शास्त्रार्थ और आत्मार्थका सहजतासे सिद्ध होना संभव है।

पत्रांक-५२८

प्रमादके अवकाश योगमें ज्ञानीको भी जिस संसारसे अंशतः व्यामोह होनेका सम्भव कहा है, उस संसारमें साधारण जीव रहकर, उसका व्यवसाय लौकिकभावसे करके आत्महितकी इच्छा करे, यह न होने जैसा ही कार्य है; क्योंकि लौकिकभावके कारण जहाँ आत्माको निवृत्ति नहीं होती, वहाँ अन्य प्रकारसे हितविचारणा होना सम्भव नहीं है। यदि एककी निवृत्ति हो तो दूसरेका परिणाम होना सम्भव है। अहितहेतु ऐसे संसारसम्बन्धी प्रसंग, लौकिकभाव, लोकचेष्टा इन सबकी सम्भाल यथासम्भव छोड़ करके, उसे कम करके आत्महितको अवकाश देना योग्य है।

आत्महितके लिये सत्संग जैसा बलवान अन्य कोई

निमित्त प्रतीत नहीं होता, फिर भी वह सत्संग भी जो जीव लौकिकभावसे अवकाश नहीं लेता, उसके लिये प्रायः निष्फल होता है, और सत्संग कुछ सफल हुआ हो, तो भी यदि लोकावेश विशेष-विशेष रहता हो तो उस फलके निर्मूल हो जानेमें देर नहीं लगती, और स्त्री, पुत्र, आरम्भ तथा परिग्रहके प्रसंगमेसे यदि निजबुद्धि छोड़नेका प्रयास न किया जाये तो सत्संगके सफल होनेका सम्भव कैसे हो ? जिस प्रसंगमें महा ज्ञानीपुरुष सँभल-सँभलकर चलते हैं, उसमें इस जीवको तो अत्यन्त अत्यन्त सावधानतासे, संकोचपूर्वक चलना चाहिये, यह बात भूलने जैसी ही नहीं है, ऐसा निश्चय करके प्रसंग-प्रसंगमें, कार्य-कार्यमें और परिणाम-परिणाममें उसका ध्यान रखकर उससे छूटा जाये, वैसे ही करते रहना।

२८ वाँ वर्ष

पत्रांक-५३७

मुमुक्षुजीवको अर्थात् विचारवान जीवको इस संसारमें अज्ञानके सिवाय और कोई भय नहीं होता। एक अज्ञानकी निवृत्ति करनेकी जो इच्छा है, उसके सिवाय विचारवान जीवको दूसरी इच्छा नहीं होती, और पूर्वकर्मके योगसे वैसा कोई उदय हो, तो भी विचारवानके चित्तमें संसार कारागृह है, समस्त लोक दुःखसे आर्त्त है, भयाकुल

है, राग-द्वेषके प्राप्त फलसे जलता है, ऐसा विचार निश्चयरूप ही रहता है; और ज्ञानप्राप्तिमें कुछ अन्तराय है, इसलिये यह कारागृहरूप संसार मुझे भयका हेतु है और लोकका प्रसंग करना योग्य नहीं है, यही एक भय विचारवानको होना योग्य है।

स्वप्नदशामें जैसे न होने योग्य ऐसी अपनी मृत्युको भी जीव देखता है, वैसे ही अज्ञानदशारूप स्वप्नरूप योगसे यह जीव अपनेको, जो अपने नहीं हैं ऐसे दूसरे द्रव्योंमें निजरूपसे मानता है; और यही मान्यता संसार है, यही अज्ञान है, नरकादि गतिका हेतु यही है, यही जन्म है, मरण है, और यही देह है, देहका विकार है, यही पुत्र है, यही पिता, यही शत्रु, यही मित्रादि भावकल्पनाका हेतु है; और जहाँ उसकी निवृत्ति हुई वहाँ सहज मोक्ष है; और इसी निवृत्तिके लिये सत्संग, सत्पुरुष आदि साधन कहे हैं; और वे साधन भी, यदि जीव अपने पुरुषार्थको छिपाये बिना उनमें लगाये, तभी सिद्ध होते हैं।

पत्रांक-५३९

सर्व जीव आत्मरूपसे समस्वभावी है। अन्य पदार्थमें जीव यदि निजबुद्धि करे तो परिभ्रमणदशा प्राप्त करता है, और निजमें निजबुद्धि हो तो परिभ्रमणदशा दूर होती है। जिसके चित्तमें ऐसे मार्गका विचार करना आवश्यक है उसको, जिसके आत्मामें वह ज्ञान प्रकाशित हुआ है,

उसकी दासानुदासरूपसे अनन्य भक्ति करना ही परम श्रेय है; और उस दासानुदास भक्तिमानकी भक्ति प्राप्त होनेपर जिसमें कोई विषमता नहीं आती, उस ज्ञानीको धन्य है; उतनी सर्वांशदशा जब तक प्रगट न हुई हो तब तक आत्माकी कोई गुरुरूपसे आराधना करे, वहाँ पहले उस गुरुपनेको छोड़कर उस शिष्यमें अपनी दासानुदासता करना योग्य है।

पत्रांक-५४२

उपदेश देनेवाला जीव स्वयं अपरिणामी रहकर उपदेश करता है, यह महा अनर्थ है।

पत्रांक-५४३

अन्यसम्बन्धी जो तादात्म्य भासित हुआ है, वह तादात्म्य निवृत्त हों तो सहजस्वभावसे आत्मा मुक्त ही है; ऐसा श्री ऋषभादि अनंत ज्ञानीपुरुष कह गये हैं, यावत् तथारूपमें समा गये हैं।

पत्रांक-५४४

जब प्रारब्धोदय द्रव्यादि कारणमें निर्बल हो तब विचारवान जीवको विशेष प्रवृत्ति करना योग्य नहीं है, अथवा धीरता रखकर आसपासकी बहुत संभालसे प्रवृत्ति करना योग्य है, एक लाभका ही प्रकार देखते रहकर करना योग्य नहीं है।

पत्रांक-५४७

आत्मामें ज्ञानद्वारा उत्पन्न हुआ यह निश्चय बदलता नहीं है कि सर्वसंग बड़ा आस्रव है; चलते, देखते और प्रसंग करते हुए समय मात्रमें यह निजभावका विस्मरण करा देता है, और यह बात सर्वथा प्रत्यक्ष देखनेमें आयी है, आती है, और आ सकने जैसी है; इसलिए अहर्निश उस बड़े आस्रवरूप सर्वसंगमें उदासीनता रहती है।

पत्रांक-५४८

ज्ञानीपुरुषका सत्संग होनेसे, निश्चय होनेसे और उसके मार्गका आराधन करनेसे जीवके दर्शनमोहनीय कर्मका उपशम या क्षय होता है, और अनुक्रमसे सर्व ज्ञानकी प्राप्ति होकर जीव कृतकृत्य होता है, यह बात प्रगट सत्य है।

ज्ञानीके सत्संगसे अज्ञानीके प्रसंगकी रुचि मंद हो जाये, सत्यासत्यका विवेक हो, अनंतानुबंधी क्रोधादिका नाश हो, अनुक्रमसे सब रागद्वेषका क्षय हो जाय, यह सम्भव है।

पत्रांक-५५०

जिस भूमिकामें जो उचित नहीं है, उसे वह जीव करे तो उस भूमिकाका उसके द्वारा सहजमें त्याग हो जाये, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

पत्रांक-५५१

श्री जिनेंद्र आत्मपरिणामकी स्वस्थताको समाधि और आत्मपरिणामकी अस्वस्थताको असमाधि कहते हैं, यह अनुभवज्ञानसे देखते हुए परम सत्य है।

अस्वस्थ कार्यकी प्रवृत्ति करना और आत्मपरिणामको स्वस्थ रखना, ऐसी विषम प्रवृत्ति श्री तीर्थंकर जैसे ज्ञानीसे होनी कठिन कही है, तो फिर दूसरे जीवमें यह बात संभवित करना कठिन हो, इसमें आश्चर्य नहीं है।

दृढ़ वैराग्यवानके चित्तको बाधा कर सके ऐसी है, वह प्रवृत्ति यदि अदृढ़ वैराग्यवान जीवको कल्याणके सन्मुख न होने दे तो इसमें आश्चर्य नहीं है।

जिनकथित सर्व पदार्थोंके भाव केवल आत्माको प्रगट करनेके लिये है।

आत्माको सुनना, उसका विचार करना, उसका निदिध्यासन करना और उसका अनुभव करना ऐसी एक वेदकी श्रुति है; अर्थात् यदि एक यही प्रवृत्ति करनेमें आये तो जीव संसारसागर तरकर पार पाये ऐसा लगता है। बाकी तो मात्र किसी श्री तीर्थंकर जैसे ज्ञानीके बिना सबको यह प्रवृत्ति करते हुए कल्याणका विचार करना, उसका निश्चय होना और आत्मस्वस्थता होना दुष्कर है।

पत्रांक-५५२

ज्ञानीपुरुषको सकामतासे भजते हुए आत्माको

प्रतिबन्ध होता है, और कई बार परमार्थदृष्टि मिटकर संसारार्थदृष्टि हो जाती है। ज्ञानीके प्रति ऐसी दृष्टि होनेसे पुनः सुलभबोधिता पाना कठिन पड़ता है, ऐसा जानकर कोई भी जीव सकामतासे समागम न करे।

पत्रांक-५६०

ज्ञानीपुरुषके वचनका दृढ़ आश्रय जिसे हो उसे सर्व साधन सुलभ हो जायें, ऐसा अखंड निश्चय सत्पुरुषोंने किया है।

इतना सत्य है कि इस दुषमकालमें सत्संगकी समीपता या दृढ़ आश्रय विशेष चाहिये और असत्संगसे अत्यन्त निवृत्ति चाहिये; तो भी मुमुक्षुके लिये तो यही योग्य है कि वह कठिनसे कठिन आत्मसाधनकी प्रथम इच्छा करे कि जिससे सर्व साधन अल्पकालमें फलीभूत हो।

ज्ञानीपुरुषको आत्मप्रतिबंधरूपसे संसारसेवा नहीं होती परंतु प्रारब्धप्रतिबंधरूपसे होती है। ऐसा होने पर भी उससे निवृत्तिरूप परिणामको प्राप्त करे, ऐसी ज्ञानीकी रीति होती है।

पत्रांक-५६१

असार और क्लेशरूप आरंभ-परिग्रहके कार्यमें रहते हुए यदि यह जीव कुछ भी निर्भय या अजागृत रहे तो बहुत वर्षोंका उपासित वैराग्य भी निष्फल जाये ऐसी

दशा हो जाती है, ऐसे निश्चयको नित्य प्रति यादकर निरुपाय प्रसंगमें काँपते हुए चित्तसे विवशतासे ही प्रवृत्ति करना योग्य है, इस बातका, मुमुक्षुजीव द्वारा कार्य-कार्यमें, क्षण-क्षणमें और प्रसंग-प्रसंगमें ध्यान रखे बिना मुमुक्षुता रहनी दुष्कर है; और ऐसी दशाका वेदन किये बिना मुमुक्षुता भी सम्भव नहीं है।

पत्रांक-५६५

बाह्य परिचयको सोच-सोचकर निवृत्त करना, यह छूटनेका एक प्रकार है। जीव इस बातका जितना विचार करेगा उतना ज्ञानीपुरुषके मार्गको समझनेका समय समीप आयेगा।

पत्रांक-५६८

सर्व क्लेशसे और सर्व दुःखसे मुक्त होनेका, आत्मज्ञानके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है। सद्-विचारके बिना आत्मज्ञान नहीं होता, और असत्संग-प्रसंगसे जीवका विचारबल नहीं चलता, इसमें किंचित्मात्र संशय नहीं है।

जीवके विषयमें, प्रदेशके विषयमें, पर्यायके विषयमें, तथा संख्यात, असंख्यात, अनंत आदिके विषयमें यथाशक्ति विचार करना। जो कुछ अन्य पदार्थका विचार करना है वह जीवके मोक्षके लिये करना है, अन्य पदार्थके ज्ञानके लिये नहीं करना है।

पत्रांक-५६९

आरंभ-परिग्रहकी अल्पता करनेसे असत्प्रसंगका बल घटता है, सत्संगके आश्रयसे असत्संगका बल घटता है। असत्संगका बल घटनेसे आत्मविचार होनेका अवकाश प्राप्त होता है। आत्मविचार होनेसे आत्मज्ञान होता है, और आत्मज्ञानसे निजस्वभावस्वरूप, सर्व क्लेश एवं सर्व दुःखसे रहित मोक्ष प्राप्त होता है, यह बात सर्वथा सत्य है।

सर्व पदार्थके स्वरूपको जाननेका हेतु मात्र एक आत्मज्ञान करना ही है। यदि आत्मज्ञान न हो तो सर्व पदार्थोंके ज्ञानकी निष्फलता है।

किसी भी तथारूप योगको प्राप्त करके जीवको एक क्षण भी अंतर्भेदजागृति हो जाये तो उससे मोक्ष विशेष दूर नहीं है।

विचारकी निर्मलतासे यदि यह जीव अन्यपरिचयसे पीछे हटे तो सहजमें अभी ही उसे आत्मयोग प्रगट हो जाये। असत्संग-प्रसंगका घिराव विशेष है, और यह जीव उससे अनादिकालका हीनसत्त्व हुआ होनेसे उससे अवकाश प्राप्त करनेके लिये अथवा उसकी निवृत्ति करनेके लिये यथासंभव सत्संगका आश्रय करे तो किसी तरह पुरुषार्थयोग्य होकर विचारदशाको प्राप्त करे।

आत्मपरिणामसे जितना अन्य पदार्थका तादात्म्य-

अध्यास निवृत्त होना, उसे श्री जिनेंद्र त्याग कहते हैं।

वह तादात्म्य-अध्यास-निवृत्तिरूप त्याग होनेके लिये यह बाह्य प्रसंगका त्याग भी उपकारी है, कार्यकारी है। बाह्य प्रसंगके त्यागके लिये अंतरत्याग कहा नहीं है, ऐसा है; तो भी इस जीवको अंतर्त्यागके लिये बाह्य प्रसंगकी निवृत्तिको कुछ भी उपकारी मानना योग्य है।

पत्रांक-५७०

जिसका अनादिकालसे अभ्यास है वह, अत्यन्त पुरुषार्थके बिना, अल्पकालमें छोड़ा नहीं जा सकता। इसलिये पुनः पुनः सत्संग, सत्शास्त्र और अपनेमें सरल विचारदशा करके उस विषयमें विशेष श्रम करना योग्य है, कि जिसके परिणाममें नित्य शाश्वत सुखस्वरूप ऐसा आत्मज्ञान होकर स्वरूपका आविर्भाव होता है।

पत्रांक-५८४

विचारवानको संगसे व्यतिरिक्तता परम श्रेयरूप है।

पत्रांक-५८८

सभी जीवमें परमात्मस्वरूप है, इसमें संशय नहीं है; तो फिर श्री देवकरणजी स्वयंको परमात्म-स्वरूप मान लें तो यह बात असत्य नहीं है; परंतु जब तक वह स्वरूप यथातथ्य प्रगट न हो, तब तक मुमुक्षु, जिज्ञासु रहना अधिक अच्छा है, और उस मार्गसे यथार्थ परमात्मस्वरूप प्रगट होता है।

पत्रांक-५९३

ग्रंथिभेद होनेमें जो वीर्यगति चाहिये, उसके होनेके लिये जीवको नित्यप्रति सत्समागम, सद्विचार और सद्ग्रंथका परिचय निरंतररूपसे करना श्रेयभूत है।

पत्रांक-५९४

सर्वकी अपेक्षा जिसमें अधिक स्नेह रहा करता है, ऐसी यह काया रोग, जरा आदिसे स्वात्माको ही दुःखरूप हो जाती है; तो फिर उससे दूर ऐसे धनादिसे जीवको तथारूप (यथायोग्य) सुखवृत्ति हो ऐसा मानते हुए विचारवानकी बुद्धि अवश्य क्षोभको प्राप्त होनी चाहिये, और किसी अन्य विचारमें लगनी चाहिये, ऐसा ज्ञानीपुरुषोंने निर्णय किया है, वह यथातथ्य है।

पत्रांक-६०५

विचारवानको देह छूटने सम्बन्धी हर्षविषाद योग्य नहीं है। आत्मपरिणामकी विभावता ही हानि और वही मुख्य मरण है। स्वभावसन्मुखता तथा उसकी दृढ़ इच्छा भी उस हर्षविषादको दूर करती है।

पत्रांक-६०९

वह सत्संग भी जीवको कई बार प्राप्त होनेपर भी फलवान नहीं हुआ, ऐसा श्री वीतरागने कहा है, क्योंकि उस सत्संगको पहचानकर इस जीवने उसे परम हितकारी

नहीं समझा, परमस्नेहसे उसकी उपासना नहीं की, और प्राप्तका भी अप्राप्त फलवान होनेयोग्य संज्ञासे विसर्जन किया है।

अवश्य इस जीवको प्रथम सर्व साधनोंको गौण मानकर निर्वाणके मुख्य हेतुभूत सत्संगकी ही सर्वार्पणतासे उपासना करना योग्य है; कि जिससे सर्व साधन सुलभ होते हैं, ऐसा हमारा आत्मसाक्षात्कार है।

उस सत्संगके प्राप्त होनेपर यदि इस जीवको कल्याण प्राप्त न हो तो अवश्य इस जीवका ही दोष है; क्योंकि उस सत्संगके अपूर्व, अलभ्य और अत्यंत दुर्लभ योगमें भी उसने उस सत्संगके योगके बाधक अनिष्ट कारणोंका त्याग नहीं किया।

मिथ्याग्रह, स्वच्छंदता, प्रमाद, इन्द्रियविषयकी उपेक्षा न की हो तभी सत्संग फलवान नहीं होता, अथवा सत्संगमें एकनिष्ठा, अपूर्वभक्ति न की हो तो फलवान नहीं होता। यदि एक ऐसी अपूर्वभक्तिसे सत्संगकी उपासना की हो तो अल्पकालमें मिथ्याग्रहादिका नाश हो और अनुक्रमसे जीव सर्व दोषोंसे मुक्त हो जाये।

सत्संगकी पहचान होना जीवको दुर्लभ है। किसी महान पुण्ययोगसे उसकी पहचान होनेपर निश्चयसे यही सत्संग, सत्पुरुष है, ऐसा साक्षीभाव उत्पन्न हुआ हो, वह जीव तो अवश्य ही प्रवृत्तिका संकोच करे; अपने दोषोंको

क्षण क्षणमें, कार्य कार्यमें और प्रसंग-प्रसंगमें तीक्ष्ण उपयोगसे देखे; देखकर उन्हें परिक्षीण करे; और उस सत्संगके लिये देहत्याग करनेका योग होता हो तो उसे स्वीकार करे; परन्तु उससे किसी पदार्थमें विशेष भक्तिस्नेह होने देना योग्य नहीं है। तथा प्रमादवश रसगारव आदि दोषोंसे उस सत्संगके प्राप्त होनेपर पुरुषार्थधर्म मंद रहता है, और सत्संग फलवान नहीं होता, ऐसा जानकर पुरुषार्थवीर्यका गोपन करना योग्य नहीं है।

सत्संगकी अर्थात् सत्पुरुषकी पहचान होनेपर भी यदि वह योग निरंतर न रहता हो तो सत्संगसे प्राप्त हुए उपदेशका ही प्रत्यक्ष सत्पुरुषके तुल्य समझकर विचार करना तथा आराधन करना कि जिस आराधनसे जीवको अपूर्व सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।

जीवको मुख्यसे मुख्य और अवश्यसे अवश्य यह निश्चय रखना चाहिये कि मुझे जो कुछ करना है वह आत्माके लिये कल्याणरूप हो, उसे ही करना है, और उसीके लिये इन तीन योगोंकी उदयबलसे प्रवृत्ति होती हो तो होने देना, परन्तु अन्तमें उस त्रियोगसे रहित स्थिति करनेके लिये उस प्रवृत्तिका संकोच करते-करते क्षय हो जाये, यही उपाय कर्तव्य है। वह उपाय मिथ्याग्रहका त्याग, स्वच्छंदताका त्याग, प्रमाद और इन्द्रियविषयका त्याग, यह मुख्य है। उसे सत्संगके योगमें

अवश्य आराधन करते ही रहना, और सत्संगकी परोक्षतामें तो अवश्य अवश्य आराधन किये ही जाना; क्योंकि सत्संगके प्रसंगमें तो यदि जीवकी कुछ न्यूनता हो तो उसके निवारण होनेका साधन सत्संग है, परन्तु सत्संगकी परोक्षतामें तो एक अपना आत्मबल ही साधन है। यदि वह आत्मबल सत्संगसे प्राप्त हुए बोधका अनुसरण न करे, उसका आचरण न करे, आचरणमें होनेवाले प्रमादको न छोड़े, तो किसी दिन भी जीवका कल्याण न हो।

संक्षेपमें लिखे हुए ज्ञानीके मार्गके आश्रयके उपदेशक इन वाक्योंका मुमुक्षुजीवको अपने आत्मामें निरंतर परिणमन करना योग्य हैं, जिन्हें हमने अपने आत्मगुणका विशेष विचार करनेके लिये शब्दोंमें लिखा है।

(यहाँपर मिथ्याग्रह, स्वच्छंद, प्रमाद, इन्द्रियविषयकी अपेक्षा और अपूर्वभक्तिका अभाव, इन्हें सत्संगकी निष्फलताके कारण बताये हैं; उसमें इस प्रकारका भाव है कि, ``मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ'' ऐसी अंतरमें स्वरूप सावधानीका अभाव और परभावकी सावधानी रहना, और उन परभाव दोषरूप होते हुऐ भी उसमें उत्साहपूर्वक रस आता है, वह है। अंतर स्वरूप सावधानीमें आत्मरस उत्पन्न हो तो, इन्द्रियविषयकी अपेक्षा अर्थात् सुखबुद्धिरूप दोषका अभाव हो, कि जो दोषके सद्भावमें सत्संग निष्फल होता है।

सत्संगदाता ऐसे ज्ञानी कि जो साक्षात् परमात्मा तुल्य है, उनके प्रति ``अपूर्व भक्ति'' के अभावमें उक्त चारों दोष सहज उत्पन्न होते हैं। इसलिये ज्ञानीका योग परम हितकारी जानकर, इसकी सर्वार्पणरूपसे उपासना कर्तव्य है। यद्यपि ज्ञानीको कोई अपेक्षा नहीं है। वे निस्पृह हैं। किन्तु मुमुक्षुकी उपरोक्त स्थिति हुए बिना बोध परिणमित नहीं होता ऐसी वस्तु स्थिति है।)

पत्रांक-६१२

जो वैराग्यवान हो उसका समागम कई प्रकारसे आत्मभावकी उन्नति करता है।

पत्रांक-६१३

हम सब जागृतरूपसे प्रवृत्ति करनेमें कुछ शिथिलता रखें तो उस संसारप्रसंगसे बाधा होनेमें देर नहीं लगती, ऐसा उपदेश इन वचनोंसे आत्मामें परिणमन करना योग्य है, इसमें संशय करना उचित नहीं है। प्रसंगकी यदि सर्वथा निवृत्ति अशक्य होती हो तो प्रसंगको कम करना योग्य है, और क्रमशः सर्वथा निवृत्तिरूप परिणाम लाना योग्य है, यह मुमुक्षुपुरुषका भूमिकाधर्म है। सत्संग और सत्शास्त्रके योगसे उस धर्मका विशेषरूपसे आराधन सम्भव है।

पत्रांक-६१६

सत्समागम और सत्शास्त्रका लाभ चाहनेवाले

मुमुक्षुओंको आरम्भ परिग्रह और रसस्वादादिका प्रतिबन्ध कम करना योग्य है, ऐसा श्री जिनादि महापुरुषोंने कहा है। जब तक अपने दोष विचारकर उन्हें कम करनेके लिये प्रवृत्तिशील न हुआ जाये तब तक सत्पुरुषका कहा हुआ मार्गका परिणाम पाना कठिन है। इस बातपर मुमुक्षु जीवको विशेष विचार करना योग्य है।

पत्रांक-६३६

निमित्तसे जिसे हर्ष होता है, निमित्तसे जिसे शोक होता है, निमित्तसे जिसे इंद्रियजन्य विषयके प्रति आकर्षण होता है, निमित्तसे जिसे इन्द्रियके प्रतिकूल प्रकारोंमें द्वेष होता है, निमित्तसे जिसे उत्कर्ष आता है, निमित्तसे जिसे कषाय उत्पन्न होता है, ऐसे जीवको यथाशक्ति उन निमित्तवासी जीवोंका संग छोड़ना योग्य है, और नित्य प्रति सत्संग करना योग्य है।

सत्संगके अयोगमें तथाप्रकारके निमित्तसे दूर रहना योग्य है। क्षण क्षणमें, प्रसंग प्रसंगपर और निमित्त निमित्तमें स्वदशाके प्रति उपयोग देना योग्य है।

पत्रांक-६४३

त्याग, वैराग्य, उपशम और भक्तिको सहज स्वभावरूप कर डाले बिना मुमुक्षुजीवको आत्मदशा कैसे आये ? परन्तु शिथिलतासे, प्रमादसे यह बात विस्मृत हो जाती है।

पत्रांक-६४७

निर्वाणमार्ग अगम अगोचर है, इसमें संशय नहीं है। अपनी शक्तिसे, सद्गुरुके आश्रयके बिना उस मार्गको खोजना अशक्य है; ऐसा वारंवार दिखाई देता है। इतना ही नहीं, किन्तु श्री सद्गुरुचरणके आश्रयसे जिसे बोधबीजकी प्राप्ति हुई हो ऐसे पुरुषको भी सद्गुरुके सत्समागमका आराधन नित्य कर्तव्य है। जगतके प्रसंग देखते हुए ऐसा मालूम होता है कि वैसे समागम और आश्रयके बिना निरालम्ब बोध स्थिर रहना विकट है।

पत्रांक-६५०

मुमुक्षुजीवको जिस जिस प्रकारसे पर - अध्यास होने योग्य पदार्थ आदिका त्याग हो, उस उस प्रकारसे अवश्य करना योग्य है। यद्यपि आरम्भ-परिग्रहका त्याग स्थूल दिखायी देता है तथापि अंतर्मुखवृत्तिका हेतु होनेसे वारंवार उसके त्यागका उपदेश दिया है।

२९ वाँ वर्ष

पत्रांक नंबर ६५३

आत्महेतुभूत संगके सिवाय मुमुक्षुजीवको सर्व संग कम करना योग्य है। क्योंकि उसके बिना परमार्थका आविर्भूत होना कठिन है।

पत्रांक नंबर ६५६

जिस जिस प्रकारसे परद्रव्य (वस्तु) के कार्यकी अल्पता हो; निज दोष देखनेका दृढ़ ध्यान रहे; और सत्समागम, सत्शास्त्रमें वर्धमान परिणतिसे परम भक्ति रहा करे उस प्रकारकी आत्मता करते हुए, तथा ज्ञानीके वचनोंका विचार करनेसे दशा विशेषता प्राप्त करते हुए यथार्थ समाधिके योग्य हो, ऐसा लक्ष्य रखियेगा, ऐसा कहा था।

पत्रांक-६५८

दो अभिनिवेशोंके बाधक रहते होनेसे जीव "मिथ्यात्व" का त्याग नहीं कर सकता। वे इस प्रकार हैं - "लौकिक" और "शास्त्रीय"। क्रमशः सत्समागमके योगसे जीव यदि उन अभिनिवेशोंको छोड़ दे तो "मिथ्यात्व" का त्याग होता है, ऐसा वारंवार ज्ञानीपुरुषोंने शास्त्रादि द्वारा उपदेश दिया है फिर भी जीव उन्हें छोड़नेके प्रति उपेक्षित किस लिये होता है ? यह बात विचारणीय है।

पत्रांक-६६१

आत्मार्थके सिवाय जिस जिस प्रकारसे जीवने शास्त्रकी मान्यता करके कृतार्थता मानी है, वह सर्व `शास्त्रीय अभिनिवेश' है। स्वच्छंदता दूर नहीं हुई, और सत्समागमका योग प्राप्त हुआ है, उस योगमें भी स्वच्छंदताके निर्वाहके लिये शास्त्रके किसी एक वचनको

बहुवचन जैसा बताकर, मुख्य साधन जो सत्समागम है, उसके समान शास्त्रको कहता है अथवा उससे विशेष भार शास्त्र पर देता है; उस जीवको भी `अप्रशस्त शास्त्रीय अभिनिवेश' है। आत्माको समझनेके लिये शास्त्र उपकारी हैं, और वह भी स्वच्छंदरहित पुरुषको; इतना ध्यान रखकर सत्शास्त्रका विचार किया जाये तो वह `शास्त्रीय अभिनिवेश' गिनने योग्य नहीं है।

पत्रांक-६६४

परमार्थकी उपेक्षा (लक्षके बिना) से जो व्यवहार संयममें ही परमार्थसंयमकी मान्यता रखे, उसके व्यवहार संयमका उसका अभिनिवेश दूर करनेके लिए, निषेध किया है। परन्तु व्यवहारसंयममें कुछ भी परमार्थकी निमित्तता नहीं है, ऐसा ज्ञानीपुरुषोंने कहा नहीं है।

पत्रांक-६६५

आरंभ-परिग्रहका त्याग किस किस प्रतिबंधसे जीव नहीं कर सकता, और वह प्रतिबंध किस प्रकारसे दूर किया जा सकता है, इस प्रकारसे मुमुक्षुजीवको अपने चित्तमें विशेष विचार-अंकुर उत्पन्न करके कुछ भी तथारूप फल लाना योग्य है। यदि वैसा न किया जाये तो उस जीवको मुमुक्षुता नहीं है, ऐसा प्रायः कहा जा सकता है।

आरंभ और परिग्रहका त्याग किस प्रकारसे हुआ

हो तो यथार्थ कहा जाये इसे पहले विचारकर बादमें उपर्युक्त विचार-अंकुर मुमुक्षुजीवको अपने अंतःकरणमें अवश्य उत्पन्न करना योग्य है।

पत्रांक-६६८

असंग आत्मस्वरूप सत्संगके योगसे नितांत सरलतासे जानना योग्य है, इसमें संशय नहीं है। सत्संगके माहात्म्यको सब ज्ञानीपुरुषोंने अतिशयरूपसे कहा है, यह यथार्थ है। इसमें विचारवानको किसी तरह विकल्प होना योग्य नहीं है।

पत्रांक-६७०

सर्व दुःखसे मुक्त होनेका सर्वोत्कृष्ट उपाय आत्मज्ञानको कहा है, यह ज्ञानीपुरुषोंका वचन सत्य है, अत्यन्त सत्य है।

उस आत्मज्ञानके होने तक जीवको मूर्तिमान आत्मज्ञानस्वरूप सद्गुरुदेवका निरंतर आश्रय अवश्य करना योग्य है, इसमें संशय नहीं है। उस आश्रयका वियोग हो तब आश्रयभावना नित्य कर्तव्य है।

उदयके योगसे तथारूप आत्मज्ञान होनेसे पूर्व उपदेशकार्य करना पड़ता हो तो विचारवान मुमुक्षु परमार्थमार्गके अनुसरण करनेके हेतुभूत ऐसे सत्पुरुषकी भक्ति, सत्पुरुषका गुणगान, सत्पुरुषके प्रति प्रमोद-भावना और सत्पुरुषके प्रति अविरोधभावनाका लोगोंको उपदेश

देता है, जिस तरह मतमतांतरका अभिनिवेश दूर हो, और सत्पुरुषके वचन ग्रहण करनेकी आत्मवृत्ति हो, वैसा करता है।

सर्व कार्यमें कर्तव्य मात्र आत्मार्थ है, यह सम्यक्भावना मुमुक्षुजीवको नित्य करना योग्य है।

पत्रांक-६७३

यथार्थज्ञान उत्पन्न होनेसे पहले जिन जीवोंको, उपदेश देनेका रहता हो उन जीवोंको, जिस तरह वैराग्य, उपशम और भक्तिका लक्ष्य हो, उस तरह प्रसंगप्राप्त जीवोंको उपदेश देना योग्य है।

पत्रांक-६७७

जितनी अपनी शक्ति हो उस सारी शक्तिसे एक लक्ष्य रखकर, लौकिक अभिनिवेशको कम करके, कुछ भी अपूर्व निरावरणता दिखती नहीं है, इसलिये "समझका केवल अभिमान है," इस तरह जीवको समझाकर जिस प्रकार जीव ज्ञान, दर्शन और चारित्रमें सतत जाग्रत हो, वही करनेमें वृत्ति लगाना, और रात-दिन उसी चिंतनमें प्रवृत्ति करना यही विचारवान जीवका कर्तव्य है; और उसके लिये सत्संग, सत्शास्त्र और सरलता आदि निजगुण उपकारभूत हैं, ऐसा विचारकर उसका आश्रय करना योग्य है।

जब तक लौकिक अभिनिवेश अर्थात् द्रव्यादि लोभ,

तृष्णा, दैहिक मान, कुल, जाति आदि सम्बन्धी मोह या विशेषत्व मानना हो, वह बात न छोड़नी हो, अपनी बुद्धिसे स्वेच्छासे अमुक गच्छादिका आग्रह रखना हो, तब तक जीवमें अपूर्व गुण कैसे उत्पन्न हो ? इसका विचार सुगम है।

पत्रांक-६७९

ज्ञानीकी वाणी पूर्वापर अविरोधी, आत्मार्थ-उपदेशक और अपूर्व अर्थका निरूपण करनेवाली होती है, और अनुभवसहित होनेसे आत्माको सतत जाग्रत करनेवाली होती है।

पत्रांक-६८९

इस संसारमें मनुष्य प्राणीको जो खेदके अकथ्य प्रसंग प्राप्त होते हैं, उन अकथ्य प्रसंगोंमेंसे यह एक महान खेदकारक प्रसंग है। ऐसे प्रसंगमें यथार्थ विचारवान पुरुषोंके सिवाय सर्व प्राणी खेदविशेषको प्राप्त होते हैं, और यथार्थ विचारवान पुरुषोंको वैराग्य विशेष होता है, संसारकी अशरणता, अनित्यता और असारता विशेष दृढ़ होती है।

सर्व संगकी अशरणता, अबंधुता, अनित्यता और तुच्छता तथा अन्यत्वभाव देखकर अपने आपको विशेष प्रतिबोध होता है कि हे जीव ! तुझे कुछ भी इस संसारमें उदयादिभावसे भी मूर्च्छा रहती हो तो उसका त्याग कर,

त्याग कर; उस मूर्च्छाका कुछ फल नहीं है, संसारमें कभी भी शरणत्व आदि प्राप्त होना नहीं है, और अविचारिताके बिना इस संसारमें मोह होना योग्य नहीं है, जो मोह अनंत जन्ममरणका और प्रत्यक्ष खेदका हेतु है, दुःख और क्लेशका बीज है; उसे शांत कर, उसका क्षय कर। हे जीव ! इसके बिना अन्य कोई हितकारी उपाय नहीं है, इत्यादि भावितात्मतासे वैराग्यको शुद्ध और निश्चल करता है। जो कोई जीव यथार्थ विचारसे देखता है उसे इसी प्रकारसे भासित होता है।

इस जीवको देहसंबंध होकर मृत्यु न होती तो इस संसारके सिवाय अन्यत्र अपनी वृत्ति लगानेका अभिप्राय न होता। मुख्यत: मृत्युके भयने परमार्थरूप दूसरे स्थानमें वृत्तिको प्रेरित किया है, वह भी किसी विरले जीवको प्रेरित हुई है। बहुतसे जीवोंको तो बाह्य निमित्तसे मृत्युभयके कारण बाह्य क्षणिक वैराग्य प्राप्त होकर विशेष कार्यकारी हुए बिना नाश पाता है। मात्र किसी एक विचारवान अथवा सुलभबोधी या लघुकर्मी जीवको उस भयसे अविनाशी निःश्रेयस पदके प्रति वृत्ति होती है।

पत्रांक-६९०

सर्व प्रकारके आरम्भ तथा परिग्रहके सम्बन्धके मूलका छेदन करनेके लिये समर्थ ऐसा ब्रह्मचर्य परम साधन है।

पत्रांक-६९२

मैं देहादिस्वरूप नहीं हूँ, और देह, स्त्री, पुत्र आदि कोई भी मेरे नहीं हैं, शुद्ध चैतन्यस्वरूप अविनाशी ऐसा मैं आत्मा हूँ, इस प्रकार आत्मभावना करते हुए रागद्वेषका क्षय होता है।

पत्रांक-६९३

ज्ञानमार्ग दुराराध्य है। परमावगाढ़दशा पानेसे पहले उस मार्गमें पतनके बहुत स्थान हैं। सन्देह, विकल्प, स्वच्छंदता, अतिपरिणामिता इत्यादि कारण वारंवार जीवके लिये उस मार्गसे पतनके हेतु होते हैं, अथवा ऊर्ध्वभूमिका प्राप्त होने नहीं देते।

क्रियामार्गमें असद्अभिमान, व्यवहार-आग्रह, सिद्धिमोह, पूजासत्कारादि योग और दैहिक क्रियामें आत्मनिष्ठा आदि दोषोंका सम्भव रहा है।

किसी एक महात्माको छोड़कर बहुतसे विचारवान जीवोंने इन्हीं कारणोंसे भक्तिमार्गका आश्रय लिया है, और आज्ञाश्रितता अथवा परमपुरुष सद्गुरुमें सर्वार्पण-स्वाधीनताको शिरसावंद्य माना है, और वैसी ही प्रवृत्ति की है। तथापि वैसा योग प्राप्त होना चाहिये; नहीं तो चिंतामणि जैसा जिसका एक समय है ऐसी मनुष्यदेह उलटे परिभ्रमणवृद्धिका हेतु होती है।

पत्राकं-६९७

अहो! ज्ञानीपुरुषकी आशय-गंभीरता, धीरता और उपशम! अहो! अहो! वारंवार अहो!

पत्राकं-६९८

प्रत्यक्ष सत्समागममें भक्ति, वैराग्य आदि दृढ़ साधनसहित मुमुक्षुको सद्गुरुकी आज्ञासे द्रव्यानुयोग विचारणीय है।

पत्राकं-७०२

लोकसमुदाय कुछ भला होनेवाला नहीं है, अथवा स्तुतिनिंदाके प्रयत्नार्थ इस देहकी प्रवृत्ति विचारवानके लिये कर्तव्य नहीं है। अंतर्मुखवृत्ति रहित बाह्यक्रियाके विधि-निषेधमें कुछ भी वास्तविक कल्याण नहीं है। गच्छादि भेदका निर्वाह करनेमें, नाना प्रकारके विकल्प सिद्ध करनेमें आत्माको आवृत करनेके बराबर है। अनेकान्तिक मार्ग भी सम्यक्, एकान्त निजपदकी प्राप्ति करानेके सिवाय दूसरे किसी अन्य हेतुसे उपकारी नहीं है, ऐसा जानकर लिखा है। वह मात्र अनुकम्पा बुद्धिसे, निराग्रहसे, निष्कपटतासे, निर्दंभतासे और हितार्थ लिखा है, ऐसा यदि आप यथार्थ विचार करेंगे तो दृष्टिगोचर होगा, और वचनके ग्रहण अथवा प्रेरणा होनेका हेतु होगा।

पत्रांक-७०३

जहाँ तक हो सके वहाँ तक ज्ञानीपुरुषके वचनोंको

लौकिक आशयमें न लेना; अथवा अलौकिक दृष्टिसे विचारना योग्य है; और जहाँ तक हो सके वहाँ तक लौकिक प्रश्नोत्तरमें भी विशेष उपकारके बिना पड़ना योग्य नहीं है। वैसे प्रसंगोंसे कई बार परमार्थदृष्टिको क्षुब्ध करने जैसा परिणाम आता है।

पत्रांक-७०६

लौकिक मान आदिकी तुच्छता समझमें आ जाये तो उसकी विशेषता नहीं लगती; और इससे उसकी इच्छा सहजमें मंद हो जाती है, ऐसा यथार्थ भासित होता है। बहुत ही मुश्किलसे आजीविका चलती हो तो भी मुमुक्षुके लिये वह पर्याप्त है; क्योंकि विशेषकी कुछ आवश्यकता या उपयोग (कारण) नहीं है, ऐसा जब तक निश्चय न किया जाये तब तक तृष्णा नाना प्रकारसे आवरण किया करती है। लौकिक विशेषतामें कुछ सारभूतता नहीं है, ऐसा निश्चय किया जाये तो मुश्किलसे आजीविका जितना मिलता हो तो भी तृप्ति रहती है। मुश्किलसे आजीविका जितना न मिलता हो तो भी मुमुक्षुजीव प्रायः आर्त्तध्यान न होने दे, अथवा होनेपर विशेष खेद करे; और आजीविकामें कमीको यथाधर्म पूर्ण करनेकी मंद कल्पना करे; इत्यादि प्रकारसे बर्ताव करते हुए तृष्णाका पराभव (क्षय) होना योग्य दिखता है।

बहुधा सत्पुरुषके वचनसे आध्यात्मिक शास्त्र भी

आत्मज्ञानका हेतु होता है, क्योंकि परमार्थ आत्मा शास्त्रमें नहीं रहता, सत्पुरुषमें रहता है। मुमुक्षुको यदि किसी सत्पुरुषका आश्रय प्राप्त हुआ हो तो प्रायः ज्ञानकी याचना करना योग्य नहीं है, मात्र तथारूप वैराग्य उपशम आदि प्राप्त करनेका उपाय करना योग्य है। वह योग्य प्रकारसे सिद्ध होनेपर ज्ञानीका उपदेश सुलभतासे परिणमित होता है, और यथार्थ विचार और ज्ञानका हेतु होता है।

जब तक कम उपाधिवाले क्षेत्रमें आजीविका चलती हो तब तक विशेष प्राप्त करनेकी कल्पनासे मुमुक्षुको, किसी एक विशेष अलौकिक हेतुके बिना अधिक उपाधिवाले क्षेत्रमें जाना योग्य नहीं है; क्योंकि उससे बहुतसी सद्वृत्तियाँ मंद पड़ जाती हैं, अथवा वर्धमान नहीं होती।

पत्राकं-७१०

आत्मा है, आत्मा अत्यन्त प्रगट है, क्योंकि स्वसंवेदन प्रगट अनुभवमें है।

पत्रांक-७१८

जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत।
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरू भगवंत।१।
कोई क्रियाजड थई रह्या, शुष्कज्ञानमां कोई।
माने मारग मोक्षनो, करुणा ऊपजे जोई।३ ।
बाह्य क्रियामां राचता, अन्तर्भेद न कांई।

ज्ञानमार्ग निषेधता, तेह क्रियाजड़ आंई।४।
बंध मोक्ष छे कल्पना, भाखे वाणी मांही।
वर्ते मोहावेशमां, शुष्कज्ञानी ते आंही।५।
वैराग्यादि सफळ तो, जो सह आतमज्ञान।
तेम ज आतमज्ञाननी, प्राप्तितणां निदान।६।
त्याग विराग न चित्तमां, थाय न तेने ज्ञान।
अटके त्याग विरागमां, तो भूले निजभान।७।
प्रत्यक्ष सद्गुरु सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार।
एवो लक्ष थया विना, ऊगे न आत्मविचार।११।
आत्मादि अस्तित्वनां, जेह निरूपक शास्त्र।
प्रत्यक्ष सद्गुरु योग नहि, त्यां आधार सुपात्र।१३।
मानादिक शत्रु महा, निज छंदे न मराय।
जातां सद्गुरु शरणमां, अल्प प्रयासे जाय।१८।
नहि कषाय उपशांतता, नहि अंतर वैराग्य।
सरळपणुं न मध्यस्थता, ए मतार्थी दुर्भाग्य।३२।
एम विचारी अन्तरे, शोधे सद्गुरु योग।
काम एक आत्मार्थनुं, बीजो नहि मनरोग।३७।
कषायनी उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष।
भवे खेद, प्राणीदया, त्यां आत्मार्थ निवास।३८।
सर्व अवस्थाने विषे, न्यारो सदा जणाय।
प्रगटरूप चैतन्यमय, ए एंधाण सदाय।५४।
केवळ होत असंग जो, भासत तने न केम ?

असंग छे परमार्थथी, पण निजभाने तेम।७६।
आत्मा सत् चैतन्यमय, सर्वाभास रहित।
जेथी केवळ पामिये, मोक्षपंथ ते रीत ।१०१।
ते जिज्ञासु जीवने, थाय सद्गुरुबोध।
तो पामे समकितने, वर्ते अंतरशोध। १०९।
शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम।
बीजुं कहीए केटलुं ? कर विचार तो पाम।११७।
दया, शांति, समता, क्षमा, सत्य, त्याग, वैराग्य।
होय मुमुक्षु घट विषे, एह सदाय सुजाग्य।१३८।

पत्रांक-७१९

अनंतबार देहके लिये आत्माका उपयोग किया है। जिस देहका आत्माके लिये उपयोग होगा उस देहमें आत्मविचारका आविर्भाव होने योग्य जानकर, सर्व देहार्थकी कल्पना छोड़कर; एक मात्र आत्मार्थमें ही उसका उपयोग करना, ऐसा निश्चय मुमुक्षुजीवको अवश्य करना चाहिये।

पत्रांक-७२१

जो ज्ञान महा निर्जराका हेतु होता है वह ज्ञान अनधिकारी जीवके हाथमें जानेसे उसे प्रायः अहितकारी होकर परिणत होता है।

३० वाँ वर्ष

पत्रांक-७२२

शरीरमें वेदनीयका असातारूपसे परिणमन हुआ हो उस समय शरीरके विपरिणामी स्वभावका विचारकर, उस शरीर और शरीरके सम्बन्धसे प्राप्त हुए स्त्री, पुत्र आदिका मोह विचारवान पुरुष छोड़ देते हैं; अथवा उस मोहको मंद करनेमें प्रवृत्त होते हैं।

पत्रांक-७२३

जब तक यह जीव लोकदृष्टिका वमन न करे तथा उसमेंसे अंतर्वृत्ति छूट न जाय तब तक ज्ञानीकी दृष्टिका वास्तविक माहात्म्य ध्यानगत नहीं हो सकता, इसमें संशय नहीं है।

पत्रांक-७२५

ज्ञानियोंने मनुष्यभवको चिंतामणिरत्नतुल्य कहा है, इसका विचार करें तो प्रत्यक्ष प्रतीत होनेवाली बात है। विशेष विचार करनेसे तो उस मनुष्यभवका एक समय भी चिंतामणिरत्नसे परम माहात्म्यवान और मूल्यवान मालूम होता है। और यदि यह मनुष्यभव देहार्थमें ही व्यतीत हो गया तब तो वह एक फूटी कौड़ीकी कीमतका भी नहीं है, यह निःसंदेह मालूम होता है।

पत्रांक-७२६

देहका और जब तक प्रारब्धका उदय बलवान है,

तब तक देहसम्बन्धी कुटुम्ब कि जिसके भरण-पोषण करनेका सम्बन्ध न छूट सकनेवाला हो अर्थात आगारवासपर्यंत जिसका भरण-पोषण करना योग्य हो, उसका भरण-पोषण मात्र मिलता हो तो उसमें संतोष करके मुमुक्षुजीव आत्महितका ही विचार करता है, तथा पुरुषार्थ करता है। देह और देहसम्बन्धी कुटुम्बके माहात्म्यादिके लिये परिग्रह आदिकी परिणामपूर्वक स्मृति भी नहीं होने देता; क्योंकि उस परिग्रह आदिकी प्राप्ति आदि कार्य ऐसे हैं कि वे प्रायः आत्महितके अवसरको ही प्राप्त नहीं होने देते।

पत्रांक-७२७

अल्प आयु और अनियत प्रवृत्ति, असीम बलवान असत्संग, पूर्वकी प्रायः अनाराधकता, बलवीर्यकी हीनता ऐसे कारणोंसे रहित कोई ही जीव होगा, ऐसे इस कालमें, पूर्वकालमें कभी भी न जाना हुआ, प्रतीत न किया हुआ, आराधित न किया हुआ, और स्वभावसिद्ध न हुआ ऐसा ``मार्ग'' प्राप्त करना दुष्कर हो इसमें आश्चर्य नहीं है। तथापि जिसने उसे प्राप्त करनेके सिवाय दूसरा कोई लक्ष्य रखा ही नहीं वह इस कालमें भी अवश्य उस मार्गको प्राप्त करता है।

मुमुक्षुजीव लौकिक कारणोंमें अधिक हर्ष-विषाद नहीं करता।

पत्रांक-७२८

देह छूटनेका काल अनियत होनेसे विचारवान पुरुष अप्रमादभावसे पहलेसे ही उसके ममत्वको निवृत्त करनेके अविरुद्ध उपायका साधन करते हैं।

पत्रांक-७२९

लोकदृष्टिमें जो-जो बातें या वस्तुएँ - जैसे शोभायमान गृहादि आरम्भ, अलंकारादि परिग्रह, लोकदृष्टिकी विचक्षणता, लोकमान्य धर्मकी श्रद्धा - बड़प्पनवाली मानी जाती हैं। उन सब बातों और वस्तुओंका ग्रहण करना प्रत्यक्ष जहरका ही ग्रहण करना है यों यथार्थ समझे बिना आप जिस वृत्तिका लक्ष्य करना चाहते हैं वह नहीं होता। पहले इन बातों और वस्तुओंके प्रति जहरदृष्टि आना कठिन देखकर कायर न होते हुए पुरुषार्थ करना योग्य है।

पत्रांक-७५३

मात्र अकेला अध्यात्मस्वरूपचिन्तन जीवको व्यामोह उत्पन्न करता है; बहुतसे जीवोंको शुष्कता प्राप्त कराता है, अथवा स्वेच्छाचारिता उत्पन्न करता है, अथवा उन्मत्त प्रलापदशा उत्पन्न करता है। भगवानके स्वरूपके ध्यानावलंबनसे भक्तिप्रधानदृष्टि होती है, और अध्यात्मदृष्टि गौण होती है। जिससे शुष्कता, स्वेच्छाचारिता और उन्मत्त प्रलापता नहीं होती, आत्मदशा बलवान हो जानेसे

स्वाभाविक अध्यात्म-प्रधानता होती है। आत्मा स्वाभाविक उच्च गुणोंको भजता है। इसलिये शुष्कता आदि दोष उत्पन्न नहीं होते, और भक्तिमार्गके प्रति भी जुगुप्सित नहीं होता। (परलक्षी धारणावान जीवको अकेला चिंतवन व्यामोह उत्पन्न करता है। ज्ञानीको तो सहजरूपसे और मुख्यरूपसे अध्यात्म-चिंतन होता है।)

पत्रांक-७६१

यदि आप अनेक प्रकारके ध्यानकी प्राप्तिके लिये चित्तकी स्थिरता चाहते हैं तो प्रिय अथवा अप्रिय वस्तुमें मोह न करें, राग न करें और द्वेष न करें।

पत्रांक-७७२

सर्व जीव-हितकारी ज्ञानीपुरुषकी वाणीको किसी भी एकांत दृष्टिको ग्रहण करके अहितकारी अर्थमें न ले जायें, यह उपयोग निरंतर स्मरणमें रखना योग्य है।

पत्रांक-७८१

जो कोई सच्चे अंतःकरणसे सत्पुरुषके वचनोंको ग्रहण करेगा वह सत्यको पायेगा, इसमें कोई संशय नहीं है; और शरीर-निर्वाह आदि व्यवहार सबके अपने अपने प्रारब्धके अनुसार प्राप्त होने योग्य हैं, इसलिये तत्संबंधी भी कोई विकल्प रखना योग्य नहीं है।

पत्रांक-७८३

जन्म, मरण आदि अनंत दुःखोंके आत्यंतिक (सर्वथा)

क्षय होनेके उपायको जीव अनादिकालसे नहीं जानता, उस उपायको जानने और करनेकी सच्ची इच्छा उत्पन्न होनेपर जीव यदि सत्पुरुषके समागमका लाभ प्राप्त करे तो वह उस उपायको जान सकता है, और उस उपायकी उपासना करके सर्व दुःखसे मुक्त हो जाता है।

ऐसी सच्ची इच्छा भी प्रायः जीवको सत्पुरुषके समागमसे ही प्राप्त होती है। ऐसा समागम, उस समागमकी पहचान, प्रदर्शित मार्गकी प्रतीति और उसी तरह चलनेकी प्रवृत्ति जीवको परम दुर्लभ है।

प्रत्यक्ष सत्पुरुषका समागम और उनके आश्रयमें विचरनेवाले मुमुक्षुओंको मोक्षसंबंधी सभी साधन प्रायः अल्प प्रयाससे और अल्पकालमें सिद्ध हो जाते हैं; परन्तु उस समागमका योग मिलना दुर्लभ है। उसी समागमके योगमें मुमुक्षुजीवका चित्त निरन्तर रहता है।

उस समागमका योग न हो तब आरम्भ-परिग्रहकी ओरसे वृत्तिको हटाकर सत्शास्त्रका परिचय विशेषत: कर्तव्य है। व्यावहारिक कार्योंकी प्रवृत्ति करनी पड़ती हो तो भी जो जीव उसमें वृत्तिको मंद करनेकी इच्छा करता है वह जीव उसे मंद कर सकता है, और सत्शास्त्रके परिचयके लिये बहुत अवकाश प्राप्त कर सकता है।

आरंभ-परिग्रहसे जिनकी वृत्ति खिन्न हो गई है, अर्थात् उसे असार समझकर जो जीव उससे पीछे हट

गये हैं, उन जीवोंको सत्पुरुषोंका समागम और सत्शास्त्रका श्रवण विशेषत: हितकारी होता है। जिस जीवकी आरम्भ-परिग्रहमें विशेष वृत्ति रहती हो, उस जीवमें सत्पुरुषके वचनोंका अथवा सत्शास्त्रका परिणमन होना कठिन है।

आरम्भ परिग्रहमें वृत्तिको मंद करना और सत्शास्त्रके परिचयमें रुचि करना प्रथम तो कठिन पड़ता है, क्योंकि जीवका अनादि प्रकृतिभाव उससे भिन्न है; तो भी जिसने वैसा करनेका निश्चय कर लिया है वह वैसा कर सका है; इसलिये विशेष उत्साह रखकर वह प्रवृत्ति कर्तव्य है।

सब मुमुक्षुओंको इस बातका निश्चय और नित्य नियम करना योग्य है, प्रमाद और अनियमितता दूर करना योग्य है।

पत्रांक-७८९

सत्शास्त्रका परिचय नियमपूर्वक निरंतर करना योग्य है। एक दूसरेके समागममें आनेपर आत्मार्थ वार्ता कर्तव्य है।

पत्रांक-७९३

सत्पुरुषकी वाणी विषय और कषायके अनुमोदनसे अथवा रागद्वेषके पोषणसे रहित होती है, यह निश्चय रखें, और चाहे जैसे प्रसंगमें उसी दृष्टिसे अर्थ करना योग्य है।

पत्रांक-७९५

पारमार्थिक करुणाबुद्धिसे निष्पक्षतासे कल्याणके साधनके उपदेष्टा पुरुषका समागम, उसकी उपासना और आज्ञाका आराधन कर्तव्य है। ऐसे समागमके वियोगमें सत्शास्त्रका यथामति परिचय रखकर सदाचारसे प्रवृत्ति करना योग्य है।

पत्रांक-८००

सत्समागम, सत्शास्त्र और सदाचारमें दृढ़ निवास, ये आत्मदशा होनेके प्रबल अवलंबन हैं। सत्समागमका योग दुर्लभ है, तो भी मुमुक्षुको उस योगकी तीव्र अभिलाषा रखना और प्राप्ति करना योग्य है। उस योगके अभावमें तो जीवको अवश्य ही सत्शास्त्ररूप विचारके अवलंबनसे सदाचारकी जाग्रति रखना योग्य है।

पत्रांक-८०६

सत्समागमके वियोगमें जीवको आत्मबल विशेष जाग्रत रखकर सत्शास्त्र और शुभेच्छासंपन्न पुरुषोंके समागममें रहना योग्य है।

पत्रांक-८१०

जो अनित्य है, जो असार है और जो अशरणरूप है वह इस जीवको प्रीतिका कारण क्यों होता है यह बात रात-दिन विचार करने योग्य है।

लोकदृष्टि और ज्ञानीकी दृष्टिमें पश्चिम पूर्व जितना

अन्तर है। ज्ञानीकी दृष्टि प्रथम तो निरालम्बन है, रुचि उत्पन्न नहीं करती, जीवकी प्रकृतिसे मेल नहीं खाती, जिससे जीव उस दृष्टिमें रुचिमान नहीं होता। परन्तु जिन जीवोंने परिषह सहन करके कुछ समय तक उस दृष्टिका आराधन किया है, वे सर्व दुःखके क्षयरूप निर्वाणको प्राप्त हुए हैं, उसके उपायको प्राप्त हुए हैं।

जीवको प्रमादमें अनादिसे रति है, परन्तु उसमें रति करने योग्य कुछ दिखायी नहीं देता।

पत्रांक-८१२

विशेष ऊँची भूमिकाको प्राप्त मुमुक्षुओंको भी सत्पुरुषोंका योग अथवा सत्समागम आधारभूत है, इसमें संशय नहीं है। निवृत्तिमान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका योग होनेसे जीव उत्तरोत्तर ऊँची भूमिकाको प्राप्त करता है। निवृत्तिमान भाव-परिणाम होनेके लिये जीवको निवृत्तिमान द्रव्य, क्षेत्र और काल प्राप्त करना योग्य है। शुद्ध समझसे रहित इस जीवको किसी भी योगसे शुभेच्छा, कल्याण करनेकी इच्छा प्राप्त हो और निःस्पृह परम पुरुषका योग मिले तो ही इस जीवको भान आना सम्भव है। उसके वियोगमें सत्शास्त्र और सदाचारका परिचय कर्तव्य है, अवश्य कर्तव्य है।

३१ वाँ वर्ष

पत्रांक-८१६

केवल अंतर्मुख होनेका सत्पुरुषोंका मार्ग सर्व दुःखक्षयका उपाय है, परंतु वह किसी ही जीवको समझमें आता है। महत्पुण्यके योगसे, विशुद्ध मतिसे, तीव्र वैराग्यसे और सत्पुरुषके समागममे वह उपाय समझमें आने योग्य है। उसे समझनेका अवसर एक मात्र यह मनुष्य देह है। वह भी अनियमित कालके भयसे गृहीत है; वहाँ प्रमाद होता है, यह खेद और आश्चर्य है। ॐ

पत्रांक-८१७

आत्मदशाको पाकर जो निर्द्वन्द्वतासे यथाप्रारब्ध विचरते हैं, ऐसे महात्माओंका योग जीवको दुर्लभ है। वैसा योग मिलनेपर जीवको उस पुरुषकी पहचान नहीं होती, और तथारूप पहचान हुए बिना उस महात्माका दृढ़ाश्रय नहीं होता। जब तक आश्रय दृढ़ न हो तब तक उपदेश फलित नहीं होता। उपदेशके फलित हुए बिना सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होती। सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके बिना जन्मादि दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं बन पाती। वैसे महात्मा पुरुषोंका योग तो दुर्लभ है, इसमें संशय नहीं है। परंतु आत्मार्थी जीवोंका योग मिलना भी कठिन है। तो भी क्वचित् क्वचित् वह योग वर्तमानमें होना सम्भव है। सत्समागम और सत्शास्त्रका परिचय

कर्तव्य है।

पत्रांक-८१९

खेद न करते हुए शूरवीरता ग्रहण करके ज्ञानीके मार्गपर चलनेसे मोक्षपट्टन सुलभ ही है। विषय-कषाय आदि विशेष विकार कर डालें, उस समय विचारवानको अपनी निर्वीर्यता देखकर बहुत ही खेद होता है, और वह आत्माकी वारंवार निंदा करता है, पुनः-पुनः तिरस्कार-वृत्तिसे देखकर, पुनः महापुरुषके चरित्र और वाक्यका अवलंबन ग्रहण कर, आत्मामें शौर्य उत्पन्न कर, उन विषयादिके विरुद्ध अति हठ करके उन्हें हटाता है; तब तक हिम्मत हारकर बैठ नहीं जाता, और केवल खेद करके रुक नहीं जाता। इसी वृत्तिका अवलंबन आत्मार्थी जीवोंने लिया है; और इसीसे अंतमें विजय पाई है। यह बात सभी मुमुक्षुओंको मुखाग्र करके हृदयमें स्थिर करना योग्य है।

पत्रांक-८२५

आत्मस्वभावकी निर्मलता होनेके लिये मुमुक्षुजीवको दो साधन अवश्य ही सेवन करने योग्य हैं - सत्श्रुत और सत्समागम। प्रत्यक्ष सत्पुरुषोंका समागम जीवको कभी-कभी ही प्राप्त होता है, परन्तु यदि जीव सद्दृष्टिमान हो तो सत्श्रुतके बहुत कालके सेवनसे होनेवाला लाभ प्रत्यक्ष सत्पुरुषके समागमसे बहुत अल्पकालमें प्राप्त कर

सकता है; क्योंकि प्रत्यक्ष गुणातिशयवान निर्मल चेतनके प्रभाववाले वचन और वृत्ति क्रिया चेष्टित्व है। जीवको वैसा समागमयोग प्राप्त हो ऐसा विशेष प्रयत्न कर्तव्य है। वैसे योगके अभावमें सत्श्रुतका परिचय अवश्य ही करना योग्य है। जिसमें शांतरसकी मुख्यता है, शांतरसके हेतुसे जिसका समस्त उपदेश है, और जिसमें सभी रसोंका शांतरसगर्भित वर्णन किया गया है, ऐसे शास्त्रका परिचय सत्श्रुतका परिचय है।

पत्रांक-८४३

`मैंने धर्म नहीं पाया', `मैं धर्म कैसे पाऊँगा ?' इत्यादि खेद न करते हुए वीतराग पुरुषोंका धर्म, जो देहादिसम्बन्धी हर्षविषादवृत्ति दूर करके `आत्मा असंग-शुद्ध-चैतन्य-स्वरूप है' ऐसी वृत्तिका निश्चय और आश्रय ग्रहण करके उसी वृत्तिका बल रखना, और जहाँ वृत्ति मंद हो जाय वहाँ वीतराग पुरुषोंकी दशाका स्मरण करना, उस अद्भुत चरित्रपर दृष्टि प्रेरित कर वृत्तिको अप्रमत्त करना, यह सुगम और सर्वोत्कृष्ट उपकारक तथा कल्याणस्वरूप है।

३२ वाँ वर्ष

पत्रांक-८५३

जैसे बने वैसे वीतराग श्रुतका अनुप्रेश्रण (चिन्तन)

विशेष कर्तव्य है। प्रमाद परम रिपु है, यह वचन जिन्हें सम्यक् निश्चित हुआ है वे पुरुष कृतकृत्य होने तक निर्भयतासे वर्तन करनेके स्वप्नकी भी इच्छा नहीं करते।

पत्रांक-८५६

जिज्ञासाबल, विचारबल, वैराग्यबल, ध्यानबल, और ज्ञानबल वर्धमान होनेके लिये आत्मार्थी जीवको तथारूप ज्ञानीपुरुषके समागमकी उपासना विशेषतः करनी योग्य है। उसमें भी वर्तमानकालके जीवोंको उस बलकी दृढ़ छाप पड़ जानेके लिये बहुत अन्तराय देखनेमें आते हैं, जिससे तथारूप शुद्ध जिज्ञासुवृत्तिसे दीर्घकालपर्यन्त सत्समागमकी उपासना करनेकी आवश्यकता रहती है। सत्समागमके अभावमें वीतरागश्रुत - परमशांतरसप्रतिपादक वीतरागवचनोंकी अनुप्रेक्षा वारंवार कर्तव्य है। चित्तस्थैर्यके लिये वह परम औषध है।

पत्रांक-८६३

आत्मार्थीको, बोध कब परिणमित हो सकता है, यह भाव स्थिरचित्तसे विचारणीय है, जो मूलभूत है।

पत्रांक-८६६

दर्शनमोहका अनुभाग घटनेसे अथवा नष्ट होनेसे, विषयके प्रति उदासीनतासे, और महत् पुरुषके चरणकमलकी उपासनाके बलसे द्रव्यानुयोग परिणत होता है।

पत्रांक-८८६

चित्तको विक्षेपरहित रखकर परमशांत श्रुतका अनुप्रेक्षण कर्तव्य है।

पत्रांक-८९३

इंद्रियोंके निग्रहपूर्वक सत्समागम और सत्श्रुत उपासनीय हैं।

३३ वाँ वर्ष

पत्रांक-८९७

परम शांत श्रुतका मनन नित्य नियमपूर्वक कर्तव्य है।

पत्रांक-९०३

प्राणीमात्रका रक्षक, बांधव और हितकारी, यदि ऐसा कोई उपाय हो तो वह वीतरागका धर्म ही है।

पत्रांक-९०५

महात्मा मुनिवरोंके चरणकी, संगकी उपासना और सत्शास्त्रका अध्ययन मुमुक्षुओंके लिये आत्मबलकी वृद्विके सदुपाय हैं।

ज्यों-ज्यों इंद्रियनिग्रह, ज्यों-ज्यों निवृत्तियोग होता है त्यों-त्यों वह सत्समागम और सत्शास्त्र अधिकाधिक उपकारी होते हैं।

पत्रांक-९१३

उपयोग-लक्षणसे सनातन-स्फुरित ऐसे आत्माको

देहसे, तैजस और कार्मण शरीरसे भी भिन्न अवलोकन करनेकी दृष्टि सिद्ध करके, वह चैतन्यात्मकस्वभाव आत्मा निरंतर वेदक स्वभाववाला होनेसे अबंधदशाको जब तक संप्राप्त न हो तब तक साता-असातारूप अनुभवका वेदन किये बिना रहनेवाला नहीं है यह निश्चय करके, जिस शुभाशुभ परिणामधाराकी परिणतिसे वह साता-असाताका सम्बन्ध करता है उस धाराके प्रति उदासीन होकर, देह आदिसे भिन्न और स्वरूपमर्यादामें रहे हुए उस आत्मामें जो चल स्वभावरूप परिणामधारा है उसका आत्यंतिक वियोग करनेका सन्मार्ग ग्रहण करके, परम शुद्धचैतन्यस्वभावरूप प्रकाशमय वह आत्मा कर्मयोगसे सकलंक परिणाम प्रदर्शित करता है उससे उपरत होकर, जिस प्रकार उपशमित हुआ जाये उस उपयोगमें और उस स्वरूपमें स्थिर हुआ जाये, अचल हुआ जाये, वही लक्ष्य, वही भावना, वही चिंतन और वही सहज परिणामरूप स्वभाव करना योग्य है। महात्माओंकी वारंवार यही शिक्षा है।

उस सन्मार्गकी गवेषणा करते हुए, प्रतीति करनेकी इच्छा करते हुए, उसे संप्राप्त करनेकी इच्छा करते हुए ऐसे आत्मार्थी जनको परमवीतरागस्वरूप देव, स्वरूपनैष्ठिक निःस्पृह निर्ग्रंथ रूप गुरु, परमदयामूल धर्मव्यवहार और परमशांतरस रहस्य-वाक्यमय सत्शास्त्र,

सन्मार्गकी संपूर्णता होने तक परमभक्तिसे उपासनीय है; जो आत्माके कल्याणके परम कारण हैं।

पत्रांक-९२७

यथार्थ देखें तो शरीर ही वेदनाकी मूर्ति है। समय-समयपर जीव उस द्वारा वेदनाका ही अनुभव करता है। क्वचित् साता और प्रायः असाताका ही वेदन करता है। मानसिक असाताकी मुख्यता होनेपर भी वह सूक्ष्म सम्यग्दृष्टिमानको मालूम होती है। शारीरिक असाताकी मुख्यता स्थूल दृष्टिमानको भी मालूम होती है। जो वेदना पूर्वकालमें सुदृढ़ बंधसे जीवने बाँधी है, वह वेदना उदय संप्राप्त होनेपर इंद्र, चंद्र, नागेन्द्र या जिनेन्द्र भी उसे रोकनेको समर्थ नहीं है। उसके उदयका जीवको वेदन करना ही चाहिये। अज्ञानदृष्टि जीव खेदसे वेदन करें तो भी कुछ वह वेदना कम नहीं होती या चली नहीं जाती। सत्यदृष्टिमान जीव शांतभावसे वेदन करें तो उससे वह वेदना बढ़ नहीं जाती, परंतु नवीन बंधका हेतु नहीं होती। पूर्वकी बलवान निर्जरा होती है। आत्मार्थीको यही कर्तव्य है।

"मैं शरीर नहीं हूँ, परंतु उससे भिन्न ऐसा ज्ञायक आत्मा हूँ, और नित्य शाश्वत हूँ। यह वेदना मात्र पूर्व कर्मकी है, परंतु मेरे स्वरूपका नाश करनेको वह समर्थ नहीं है; इसलिये मुझे खेद कर्तव्य ही नहीं है" इस

तरह आत्मार्थीका अनुप्रेक्षण होता है।

पत्रांक-९३६

जिसका माहात्म्य अचिंत्य है, ऐसा सत्संगरूपी कल्पवृक्ष प्राप्त होनेपर जीव दरिद्र रहे, ऐसा हो तो इस जगतमें वह ग्यारहवाँ आश्चर्य ही है।

पत्रांक-९३९

सम्यक् प्रकारसे वेदना सहन करनेरूप परम धर्म परम पुरुषोंने कहा है।

तीक्ष्ण वेदनाका अनुभव करते हुए स्वरूपभ्रंशवृत्ति न हो यही शुद्ध चारित्रका मार्ग है।

उपशम ही जिस ज्ञानका मूल है, उस ज्ञानमें तीक्ष्ण वेदना परम निर्जरा रूप भासने योग्य है।

३४ वाँ वर्ष

पत्रांक-९४९

लोकसंज्ञा जिसकी जिन्दगीका लक्ष्यबिंदु है वह जिंदगी चाहे जैसी श्रीमंतता, सत्ता या कुटुंब परिवार आदिके योगवाली हो तो भी वह दुःखका ही हेतु है। आत्मशांति जिस जिंदगीका लक्ष्यबिंदु है वह जिंदगी चाहे तो एकाकी, निर्धन और निर्वस्त्र हो तो भी परम समाधिका स्थान है।

पत्रांक-९५४

जिनपद निजपद एकता, भेदभाव नहि कांई।
लक्ष थवाने तेहनो, कह्यां शास्त्र सुखदाई।३।
जिन प्रवचन दुर्गम्यता, थाके अति मतिमान।
अवलंबन श्री सद्गुरु, सुगम अने सुखखाण ।४।
विषय विकार सहित जे, रह्या मतिना योग।
परिणामनी विषमता, तेने योग अयोग।८।
मंद विषय ने सरळता, सह आज्ञा सुविचार।
करुणा कोमळतादि गुण, प्रथम भूमिका धार ।९।

उपदेश नोंध

२

धर्ममें लौकिक बड़प्पन, मान, महत्त्वकी इच्छा, ये धर्मके द्रोहरूप हैं।

१४

ज्ञानीका मार्ग सुलभ है परन्तु उसे प्राप्त करना दुष्कर है; यह मार्ग विकट नहीं है, सीधा है, परन्तु उसे पाना विकट है। प्रथम सच्चा ज्ञानी चाहिये। उसे पहचानना चाहिये। उसकी प्रतीति आनी चाहिये। बादमें उसके वचनपर श्रद्धा रखकर निःशंकतासे चलनेसे मार्ग सुलभ है, परंतु ज्ञानीका मिलना और पहचानना विकट है, दुष्कर है।

२०

विद्वत्ता और ज्ञान इन दोनोंको एक न समझें, दोनों

एक नहीं हैं। विद्वत्ता हो, फिर भी ज्ञान न हो। सच्ची विद्वत्ता तो यह है कि जो आत्मार्थके लिये हो, जिससे आत्मार्थ सिद्ध हो, आत्मत्व समझमें आये, प्राप्त किया जाये। जहाँ आत्मार्थ होता है वहाँ ज्ञान होता है, विद्वत्ता हो या न भी हो।

३५

स्वच्छंदसे, स्वमतिकल्पनासे और सद्गुरुकी आज्ञाके बिना ध्यान करना यह तरंगरूप है और उपदेश, व्याख्यान करना यह अभिमानरूप है।

उपदेश छाया

७१२ (पृष्ठ संख्या)

"मुझे किससे बंधन होता है ?" और "वह किससे दूर हो ?" यह जाननेके लिये शास्त्र रचे गये हैं। लोगोंमें पूजे जानेके लिये शास्त्र नहीं रचे गये हैं।

अपनेमें कोई गुण प्रगट हुआ हो, और उसके लिये यदि कोई मनुष्य अपनी स्तुति करे और उससे यदि अपना आत्मा अहंकार करे तो वह पीछे हटता है। अपने आत्माकी निंदा न करे, अभ्यंतर दोषका विचार न करे, तो जीव लौकिकभावमें चला जाता है; परन्तु यदि अपने दोष देखे, अपने आत्माकी निंदा करे, अहंभावसे रहित होकर विचार करे, तो सत्पुरुषके आश्रयसे आत्मलक्ष्य

होता है।

७२३ (**पृष्ठ संख्या**)

सत्पुरुषकी अपेक्षा मुमुक्षुका त्याग-वैराग्य बढ़ जाना चाहिये। मुमुक्षुओंको जागृत-जागृत होकर वैराग्य बढ़ाना चाहिये। सत्पुरुषका एक भी वचन सुनकर अपनेमें दोषोंके अस्तित्वका बहुत ही खेद करेगा और दोष कम करेगा तभी गुण प्रकट होंगे। सत्संग-समागमकी आवश्यकता है। बाकी सत्पुरुष तो, जैसे एक बटोही दूसरे बटोहीको रास्ता बताकर चला जाता है, उसी तरह रास्ता बताकर चले जाते हैं।

७३२ (**पृष्ठ संख्या**)

उपदेश सुननके लिये सुननेके कामीने कर्मरूपी गुदड़ी ओढ़ी है, इसलिये उपदेशरूपी लकड़ी नहीं लगती। जो तरनेका कामी हो उसने धोतीरूप कर्म ओढ़े हैं इसलिये उपदेशरूप लकड़ी पहले लगती है।

७३५ (**पृष्ठ संख्या**)

किसी पदार्थके बिना चले नहीं ऐसा मुमुक्षुको नहीं होना चाहिये।

७३६ (**पृष्ठ संख्या**)

तृष्णा कम करें क्योंकि वह एकांत दुःखदायी है। जैसे उदय होगा वैसे होगा, इसलिये तृष्णाको अवश्य

कम करें। बाह्य प्रसंग अंतर्वृत्तिके लिये आवरणरूप हैं इसलिये उन्हें यथासंभव कम करते रहें।

७३७ (पृष्ठ संख्या)

जिस मनुष्यने लाखों रुपयोंकी ओर मुड़कर पीछे नहीं देखा, वह अब हजारके व्यापारमें बहाना निकालता है उसका कारण यह है कि अंतरसे आत्मार्थके लिये कुछ करनेकी इच्छा नहीं है। जो आत्मार्थी हो गया वह मुड़कर पीछे नहीं देखता, वह तो पुरुषार्थ करके सामने आ जाता है। शास्त्रमें कहा है कि आवरण, स्वभाव, भवस्थिति कब पके ? तो कहते हैं कि जब पुरुषार्थ करे तब।

७३८ (पृष्ठ संख्या)

ज्ञान जो काम करता है वह अद्‌भुत है। सत्पुरुषके वचनोंके बिना विचार नहीं आता; विचारके बिना वैराग्य नहीं आता; वैराग्य एवं विचारके बिना ज्ञान नहीं आता। इस कारणसे सत्पुरुषके वचनोंका वारंवार विचार करें।

७३९, ७४० (पृष्ठ संख्या)

कलईपर सिक्का लगा दें तो भी उसकी रुपयेकी कीमत नहीं हो जाती। जब कि चाँदीपर सिक्का न लगायें तो भी उसकी कीमत कम नहीं हो जाती। उसी तरह यदि गृहस्थावस्थामें ज्ञान प्राप्त हो, गुण प्रगट हो, समकित हो तो उसका मूल्य कम नहीं हो जाता।

ज्ञान तो वह है कि जिससे बाह्य वृत्तियाँ रुक जाती हैं, संसारपरसे सचमुच प्रीति घट जाती है, सच्चेको सच्चा जानता है। जिससे आत्मामें गुण प्रगट हो वह ज्ञान है।

७४४ (**पृष्ठ संख्या**)

जो जीव अपनेको मुमुक्षु मानता हो, तरनेका कामी मानता हो, समझदार हूँ ऐसा मानता हो, उसे देहमें रोग होते समय आकुल-व्याकुलता होती हो, तो उस समय विचार करे - `तेरी मुमुक्षुता, चतुरता कहाँ चली गयीं ?' उस समय विचार क्यों नहीं करता होगा ? यदि तरनेका कामी है तो तो वह देहको असार समझता है, देहको आत्मासे भिन्न मानता है, उसे आकुलता नहीं आनी चाहिये।

व्याख्यानसार १

९३

श्रेयस्कर निजस्वरूपका ज्ञान जब तक प्रगट नहीं किया, तब तक परद्रव्यका चाहे जितना ज्ञान प्राप्त करे तो भी वह किसी कामका नहीं है; इसलिये उत्तम मार्ग यह है कि दूसरी सब बातें छोड़कर अपने आत्माको पहचाननेका प्रयत्न करे।

१२९

स्व-परको अलग करनेवाला जो ज्ञान है वही ज्ञान

है। इस ज्ञानको प्रयोजनभूत कहा गया है। इसके सिवाय जो ज्ञान है वह अज्ञान है। शुद्ध आत्मदशारूप शांत जिन है। उसकी प्रतीति जिनप्रतिबिंब सूचित करता है। उस शांत दशाको पानेके लिये जो परिणति, अथवा अनुकरण अथवा मार्ग है उसका नाम `जैन'-जिस मार्गपर चलनेसे जैनत्व प्राप्त होता है।

१३०

यह मार्ग आत्मगुणरोधक नहीं है परन्तु बोधक है, अर्थात् आत्मगुणको प्रगट करता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। यह बात परोक्ष नहीं परन्तु प्रत्यक्ष है। प्रतीति करनेके अभिलाषीको पुरुषार्थ करनेसे सुप्रतीत होकर प्रत्यक्ष अनुभवगम्य हो जाता है।

२२०

आज तक आत्माका अस्तित्व भासित नहीं हुआ। आत्माके अस्तित्वका भास होनेसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है। अस्तित्व सम्यक्त्वका अंग है। अस्तित्व यदि एक बार भी भासित हो तो वह दृष्टिके सामने रहा करता है, और सामने रहनेसे आत्मा वहाँसे हट नहीं सकता। यदि आगे बढ़े तो भी पैर पीछे पड़ते हैं, अर्थात् प्रकृति जोर नहीं मारती। एक बार सम्यक्त्व आनेके बाद वह पड़े तो फिर ठिकानेपर आ जाता है। ऐसा होनेका मूल कारण

अस्तित्वका भासना है।

व्याख्यानसार - २

१/३

वीतराग वचनके असरसे जिसे इन्द्रियसुख नीरस न लगे तो उसने ज्ञानीके वचन सुने ही नहीं, ऐसा समझें।

१/४

ज्ञानीके वचन विषयका वमन, विरेचन करानेवाले हैं।

४/१६

जो गुण अपनेमें नहीं है वह गुण अपनेमें है, ऐसा जो कहता है अथवा मनवाता है, उसे मिथ्यादृष्टि समझें।

४/३२

विषय क्षीण नहीं हुए, फिर भी जो जीव अपनेमें वर्तमानमें गुण मान बैठे हैं, उन जीवों जैसी भ्रांति न करते हुए उन विषयोंका क्षय करनेकी ओर ध्यान दें।

५/३

कर्मसे सुखदुःख सहन करते हुए भी परिग्रहके उपार्जन तथा उसके रक्षणके लिये सब प्रयत्न करते हैं। सब सुखको चाहते हैं, परन्तु वे परतंत्र हैं। परतंत्रता प्रशंसापात्र नहीं है, वह दुर्गतिका हेतु है। अतः सच्चे सुखके इच्छुकके लिये मोक्षमार्गका वर्णन किया गया है।

१०/१५

यथार्थ स्वरूप समझे बिना अथवा जो स्वयं कहता है वह परमार्थसे यथार्थ है या नहीं, यह जाने बिना, समझे बिना जो वक्ता होता है वह अनंत संसार बढ़ाता है। इसलिये जब तक यह समझनेकी शक्ति न हो तब तक मौन रहना अच्छा है।

११/१८

देह और आत्माका भेद करना 'भेदज्ञान' है। ज्ञानीका वह जाप है। उस जापसे वे देह और आत्माको अलग कर सकते हैं। वह भेदविज्ञान होनेके लिये महात्माओंने सब शास्त्र रचे हैं।

३०/१२

अधिक श्रवण करनेसे मननशक्ति मंद होती हुए देखनेमें आती है।

आभ्यंतर परिणाम अवलोकन
संस्मरणपोथी १
वर्ष २२ से ३४वें वर्ष पर्यंत
आत्मसाधन

७

द्रव्य - मैं एक हूँ, असंग हूँ, सर्व परभावसे मुक्त हूँ।

क्षेत्र - असंख्यात निज-अवगाहना प्रमाण हूँ।

काल - अजर, अमर, शाश्वत हूँ। स्वपर्याय - परिणामी समयात्मक हूँ।

भाव - शुद्ध चैतन्य मात्र निर्विकल्प द्रष्टा हूँ।

१०

नाना प्रकारके नय, नाना प्रकारके प्रमाण, नाना प्रकारके भंगजाल, नाना प्रकारके अनुयोग, ये सब लक्षणरूप हैं। लक्ष्य एक सच्चिदानंद है।

संस्मरणपोथी - २

५

हे मुमुक्षु! वीतरागपद वारंवार विचार करने योग्य है, उपासना करने योग्य है, ध्यान करने योग्य है।

७

हे जीव! स्थिर दृष्टिसे तू अंतरंगमें देख, तो सर्व

परद्रव्यसे मुक्त ऐसा तेरा स्वरूप परम प्रसिद्ध अनुभवमें आयेगा।

१०

एकांत आत्मवृत्ति।
एकांत आत्मा।
केवल एक आत्मा
केवल एक आत्मा ही।
केवल मात्र आत्मा।
केवल मात्र आत्मा ही।
आत्मा ही।
शुद्धात्मा ही।
सहजात्मा ही।
निर्विकल्प, शब्दातीत सहज स्वरूप आत्मा ही।

११

अहो चेतन ! अहो उसका समार्थ्य ! अहो ज्ञानी ! अहो उनकी गवेषणा ! अहो उनका ध्यान ! अहो उनकी समाधि ! अहो उनका संयम ! अहो उनका अप्रमत्त भाव ! अहो उनकी परम जागृति ! अहो उनका वीतराग स्वभाव ! अहो उनका निरावरण ज्ञान ! अहो उनके योगकी शांति ! अहो उनके वचन आदि योगका उदय !

१८

परानुग्रह परम कारुण्यवृत्तिकी अपेक्षा भी प्रथम

चैतन्य जिनप्रतिमा हो। चैतन्य जिनप्रतिमा हो।

२०

हे सर्वोत्कृष्ट सुखके हेतुभूत सम्यग्दर्शन ! तुझे अत्यन्त भक्तिसे नमस्कार हो !

इस अनादि-अनन्त संसारमें अनंत-अनंत जीव तेरे आश्रयके बिना अनंत-अनंत दुःखका अनुभव करते हैं।

तेरे परमानुग्रहसे स्वस्वरूपमें रुचि हुई, परम वीतराग स्वभावके प्रति परम निश्चय हुआ, कृतकृत्य होनेका मार्ग ग्रहण हुआ।

संस्मरणपोथी - ३

२

सर्वज्ञपद वारंवार श्रवण करने योग्य, पठन करने योग्य, विचार करने योग्य, ध्यान करने योग्य और स्वानुभवसे सिद्ध करने योग्य है।

२३

अहो ! सर्वोत्कृष्ट शांत रसमय सन्मार्ग-

अहो ! उस सर्वोत्कृष्ट शांत रसप्रधान मार्गके मूल सर्वज्ञदेव -

अहो ! उस सर्वोत्कृष्ट शांत रसको जिन्होंने सुप्रतीत कराया ऐसे परमकृपालु सद्गुरुदेव -

इस विश्वमें सर्वकाल आप जयवंत रहें, जयवंत रहें।

श्री वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
उपलब्ध प्रकाशन (हिन्दी)

	ग्रंथ का नाम एवं विवरण	मूल्य
०१	अनुभव प्रकाश (ले. दीपचंदजी कासलीवाल)	-
०२	आत्मयोग (श्रीमद् राजचंद पत्रांक-४६९, ४९१, ६०९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
०३	अनुभव संजीवनी (पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखे गये वचनामृतोंका संकलन)	१५०-००
०४	आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन (पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा)	५०-००
०५	आत्मअवलोकन	-
०६	बृहद द्रव्यसंग्रह	अनुपलब्ध
०७	द्रव्यदृष्टिप्रकाश (तीनों भाग-पूज्य श्री निहालचंदजी सोगानीजीके पत्र एवं तत्वचर्चा)	३०-००
०८	दूसरा कुछ न खोज (प्रत्यक्ष सत्पुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०६-००
०९	दंसणमूलो धम्मा (सम्यक्त्व महिमा विषयक आगमोंके आधार)	०६-००
१०	धन्य आराधना (श्रीमद राजचंद्रजीकी अंतरंग अध्यात्म दशा पर पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा विवेचन)	-
११	दिशा बोध (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१६६, ४४९, ५७२ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१२	धन्य पुरुषार्थी	-
१३	धन्य अवतार	-
१४	गुरु गुण संभारणा (पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन द्वारा गुरु भक्ति)	१५-००
१५	गुरु गिरा गौरव	-
१६	जिणसासणं सव्वं (ज्ञानीपुरुष विषयक वचनामृतोंका संकलन)	०८-००
१७	कुटुम्ब प्रतिबंध (श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१०३,३३२,५१०, ५२८,५३७ एवं ३७४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
१८	कहान रत्न सरिता (परमागमसारके विभिन्न वचनामृतों पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	३०-००
१९	मूलमें भूल (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके विविध प्रवचन)	०८-००
२०	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-२५४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	-

२१	मुक्तिका मार्ग (सत्ता स्वरूप ग्रन्थ पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन)	१०-००
२२	निर्भ्रांत दर्शनकी पगडंडी (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	१०-००
२३	परमागमसार (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके १००८ वचनामृत्त)	-
२४	प्रयोजन सिद्धि (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	०४-००
२५	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (श्रीमद राजचंद्र पत्रांक-१९५, १२८, २६४ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२०-००
२६	प्रवचन नवनीत (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२७	प्रवचन नवनीत (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके खास प्रवचन)	२०-००
२८	प्रवचन नवनीत (भाग-३) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ नय के खास प्रवचन)	२०-००
२९	प्रवचन नवनीत (भाग-४) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके ४७ शक्ति के खास प्रवचन)	२०-००
३०	प्रवचन सुधा (भाग-१) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३१	प्रवचन सुधा (भाग-२) (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचनसार परमागम पर धारावाही प्रवचन)	२०-००
३२	प्रवचनसार	अनुपलब्ध
३३	प्रंचास्तिकाय संग्रह	अनुपलब्ध
३४	सम्यक्ज्ञानदीपिका (ले. श्री धर्मदासजी क्षुल्लक)	१५-००
३५	ज्ञानामृत्त (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से चयन किये गये वचनामृत्त)	-
३६	सम्यग्दर्शनके सर्वोत्तकृष्ट निवासभूत छ पदोंका अमृत पत्र (श्रीमद रादचंद्र पत्रांक-४९३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	१८-००
३७	सिद्धिपका सर्वश्रेष्ठ उपाय (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथमें से पत्रांक-१४७,१९४, २००,५११,५६० एवं ८१९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	२५-००
३८	सुविधि दर्शन (सुविधि लेख पर पूज्य भाईश्री शशीभाईके प्रवचन)	४०-००
३९	समयसार नाटक	अनुपलब्ध

४०	समयसार कलश टीका	अनुपलब्ध
४१	समयसार	अनुपलब्ध
४२	तत्त्वानुशीलन (भाग-१,२,३) (ले. पूज्य भाईश्री शशीभाई)	२०-००
४३	तत्थ्य	अनुपलब्ध
४४	विधि विज्ञान (विधि विषयक वचनामृत्तोंका संकलन)	१०-००
४५	वचनामृत्त रहस्य (पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके नाईरौबीमें हुए प्रवचन	२०-००

વીતરાગ સત્‌સાહિત્ય પ્રસારક ટ્રસ્ટ
ઉપલબ્ધ પ્રકાશન (ગુજરાતી)
ગ્રંથનું નામ તેમજ વિવરણ

		મૂલ્ય
૦૧	અધ્યાત્મિકપત્ર (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદ્રજી સોગાનીજીના પત્રો)	૦૨-૦૦
૦૨	અધ્યાત્મ સંદેશ (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના વિવિધ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ
૦૩	આત્મયોગ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૫૯૬, ૪૯૧, ૬૦૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૦૪	અનુભવ સંજીવની (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૧૫૦-૦૦
૦૫	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૧) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૬	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૨) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૭	અધ્યાત્મ સુધા (ભાગ-૩) બહેનશ્રીના વચનામૃત ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૦૮	અધ્યાત્મ પરાગ	-
૦૯	બીજું કાંઈ શોધમા (પ્રત્યક્ષ સત્પુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	-
૧૦	બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૧) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો)	-
૧૧	બૃહદ દ્રવ્યસંગ્રહ પ્રવચન (ભાગ-૨) (દ્રવ્યસંગ્રહ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો)	-
૧૨	ભગવાન આત્મા (દ્રષ્ટિ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	-
૧૩	દ્વાદશ અનુપ્રેક્ષા (શ્રીમદ્‌ ભગવત્‌ કુંદકુંદાચાર્યદેવ વિરચિત	૦૨-૦૦
૧૪	દ્રવ્યદંષ્ટિ પ્રકાશ (ભાગ-૩) (પૂજ્ય શ્રી નિહાલચંદજી સોગાની તત્ત્વચર્ચા)	૦૪-૦૦
૧૫	દસ લક્ષણ ધર્મ (ઉત્તમ ક્ષમાદિ દસ ધર્મો પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીનાં પ્રવચનો)	૦૬-૦૦
૧૬	ધન્ય આરાધના (શ્રીમદ રાજચંદ્રજીની અંતરંગ અધ્યાત્મ દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા વિવેચન)	૧૦-૦૦

૧૭	દિશા બોધ (શ્રીમદ્ રાજચંદ્રજી પત્રાંક-૧૬૬,૪૪૯,અને ૫૭૨ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ દ્વારા પ્રવચનો)	૧૦-૦૦
૧૮	ગુરુ ગુણ સંભારણા (પૂજ્ય બહેનશ્રીના શ્રીમુખેથી સ્ફુરિત ગુરુભક્તિ)	૦૫-૦૦
૧૯	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (પૂજ્ય સૌગાનીજીની અંગત દશા ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૦	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૧) (દ્રવ્યદૃષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૧	ગુરુ ગિરા ગૌરવ (ભાગ-૨) (દ્રવ્યદૃષ્ટિ પ્રકાશ ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પત્રો પર સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૨૨	જિણસાસણં સવ્વં (જ્ઞાનીપુરુષ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૮-૦૦
૨૩	કુટુંબ પ્રતિબંધ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૦૩, ૩૩૨, ૫૧૦, ૫૨૮, ૫૩૭ તથા ૩૭૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૩	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૧) (પરમાગમસારમાંથી ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃત્તો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૨૪	કહાન રત્ન સરિતા (ભાગ-૨) (પરમાગમસારમાંથી ક્રમબદ્ધ પર્યાય વિષયક ચૂંટેલા કેટલાક વચનામૃત્તો ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈનાં પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૨૫	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૧) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૬	કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા પ્રવચન (ભાગ-૨) કાર્તિકેયાનુપ્રેક્ષા ગ્રંથ ઉપર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૨૭	ક્રમબદ્ધપર્યાય	-
૨૮	મુમુક્ષતા આરોહણ ક્રમ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૨૫૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૧૫-૦૦
૨૯	નિર્ભ્રાંત દર્શનની કેડીએ (લે. પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૧૦-૦૦
૩૦	પરમાત્મપ્રકાશ (શ્રીમદ્ યોગીન્દ્રદેવ વિરચિત)	૧૫-૦૦
૩૧	પરમાગમસાર (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના ૧૦૦૮ વચનામૃત્ત)	૧૧-૨૫
૩૨	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૧) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	અનુપલબ્ધ

૩૩	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૨) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ખાસ પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૩૪	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૩) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૩૫	પ્રવચન નવનીત (ભાગ-૪) (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના ૪૭ નય શક્તિઓ ઉપર ખાસ પ્રવચનો)	૭૫-૦૦
૩૬	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૧) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	૬૫-૦૦
૩૭	પ્રવચન પ્રસાદ (ભાગ-૨) (પંચાસ્તિકાયસંગ્રહ પર પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રીના પ્રવચનો)	-
૩૮	પ્રયોજન સિદ્ધિ (લે. પૂજ્યભાઈશ્રી શશીભાઈ)	૦૩-૦૦
૩૯	પથ પ્રકાશ (માર્ગદર્શન વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૬-૦૦
૪૦	પરિભ્રમણના પ્રત્યાખ્યાન (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૯૫, ૧૨૮ તથા ૨૬૪ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૪૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૨	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૨) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૮૫-૦૦
૪૩	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૩) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૪	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૪) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૪૦-૦૦
૪૫	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૫) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૬	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૬) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૩૦-૦૦
૪૭	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૭) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૪૮	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૮) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૪૯	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૯) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૦	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૦) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૧	પ્રવચન સુધા (ભાગ-૧૧) પ્રવચનસાર શાસ્ત્રના સળંગ પ્રવચનો	૨૦-૦૦
૫૨	પ્રવચનસાર	અનુપલબ્ધ
૫૩	પ્રચારિસ્તકાય સંગ્રહ	અનુપલબ્ધ
૫૪	પદ્મનંદીપંચવિશતી	-
૫૫	પુરુષાર્થ સિદ્ધિ ઉપાય	અનુપલબ્ધ
૫૬	રાજ હૃદય (ભાગ-૧) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦

૫૭	રાજ હૃદય (ભાગ-૨) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૮	રાજ હૃદય (ભાગ-૩) (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના સળંગ પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૫૯	સમ્યક્‌જ્ઞાનદીપિકા (લે. શ્રી ધર્મદાસજી ક્ષુલ્લક)	૧૫-૦૦
૬૦	જ્ઞાનામૃત્ત (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી ચૂંટેલા વચનામૃત્તો)	૦૬-૦૦
૬૧	સમ્યગ્‌દર્શનના નિવાસના સર્વોત્કૃષ્ટ નિવાસભૂત છ પદનો પત્ર (શ્રીમદ્‌ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૪૯૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૦-૦૦
૬૨	સિદ્ધપદનો સર્વશ્રેષ્ઠ ઉપાય (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૧૪૭, ૧૯૪, ૨૦૦, ૫૧૧, ૫૬૦ તથા ૮૧૯ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૩	સમયસાર દોહન (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજી સ્વામીના નાઈરોબીમાં સમયસાર પરમાગમ ઉપર થયેલાં પ્રવચનો)	૩૫-૦૦
૬૪	સુવિધિદર્શન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત સુવિધિ લેખ ઉપર તેમનાં પ્રવચન)	૨૫-૦૦
૬૫	સ્વરૂપભાવના (શ્રીમદ રાજચંદ્ર પત્રાંક-૯૧૩, ૭૧૦ અને ૮૩૩ પર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૬૬	સમકિતનું બીજ (શ્રીમદ રાજચંદ્ર ગ્રંથમાંથી સત્પુરુષની ઓળખાણ વિષયક પત્રાંક-ઉપર પૂજ્ય ભાઈશ્રી શશીભાઈના પ્રવચનો)	૩૦-૦૦
૬૭	તત્ત્વાનુશીલન (પૂજ્ય ભાઈશ્રી દ્વારા લિખિત વિવિધ લેખ)	-
૬૮	વિધિ વિજ્ઞાન (વિધિ વિષયક વચનામૃત્તોનું સંકલન)	૦૭-૦૦
૬૯	વચનામૃત્ત રહસ્ય (પૂજ્ય ગુરુદેવશ્રી કાનજીસ્વામીના નાઈરોબીમાં બહેનશ્રીના વચનામૃત્ત પર થયેલાં પ્રવચનો)	૨૫-૦૦
૭૦	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૧)	-
૭૧	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૨)	-
૭૨	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૩)	-
૭૩	વચનામૃત્ત પ્રવચન (ભાગ-૪)	-
૭૪	યોગસાર	અનુપલબ્ધ
૭૫	ધન્ય આરાધક	-

वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्टमें से प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी प्रत संख्या

०१	प्रवचनसार (गुजराती)	१५००
०२	प्रवचनसार (हिन्दी)	४२००
०३	पंचास्तिकायसंग्रह (गुजराती)	१०००
०४	पंचास्तिकाय संग्रह (हिन्दी)	२५००
०५	समयसार नाटक (हिन्दी)	३०००
०६	अष्टपाहुड (हिन्दी)	२०००
०७	अनुभव प्रकाश	२१००
०८	परमात्मप्रकाश	४१००
०९	समयसार कलश टीका (हिन्दी)	२०००
१०	आत्मअवलोकन	२०००
११	समाधितंत्र (गुजराती)	२०००
१२	बृहद द्रव्यसंग्रह (हिन्दी)	३०००
१३	ज्ञानामृत (गुजराती)	१०,०००
१४	योगसार	२०००
१५	अध्यात्मसंदेश	२०००
१६	पद्मनंदीपंचविंशती	३०००
१७	समयसार	३१००
१८	समयसार (हिन्दी)	२५००
१९	अध्यात्मिक पत्रो (पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी द्वारा लिखित)	३०००
२०	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (गुजराती)	१०,०००
२१	द्रव्यदृष्टि प्रकाश (हिन्दी)	६६००
२२	पुरुषार्थसिद्दिउपाय (गुजराती)	६१००
२३	क्रमबद्धपर्याय (गुजराती)	८०००
२४	अध्यात्मपराग (गुजराती)	३०००

२५	धन्य अवतार (गुजराती)	३७००
२६	धन्य अवतार (हिन्दी)	८०००
२७	परमामगसार (गुजराती)	५०००
२८	परमागमसरा (हिन्दी)	४०००
२९	वचनामृत प्रवचन भाग-१-२	५०००
३०	निर्भृांत दर्शननी केडीए (गुजराती)	५०००
३१	निर्भृांत दर्शनकी पगडंडी (हिन्दी)	७०००
३२	अनुभव प्रकाश (हिन्दी)	२०००
३३	गुरुगुण संभारणा (गुजराती)	३०००
३४	जिण सासणं सव्वं (गुजराती)	२०००
३५	जिण सासणं सव्वं (हिन्दी)	२०००
३६	द्वादश अनुप्रेक्षा (गुजराती)	२०००
३७	दस लक्षण धर्म (गुजराती)	२०००
३८	धन्य आराधना (गुजराती)	१०००
३९	धन्य आराधना (हिन्दी)	१५००
४०	प्रवचन नवनीत भाग-१-४	५८५०
४१	प्रवचन प्रसाद भाग-१-२	२३००
४२	पथ प्रकाश (गुजराती)	२०००
४३	प्रयोजन सिद्धि (गुजराती)	३५००
४४	प्रयोजन सिद्धि (हिन्दी)	२५००
४५	विधि विज्ञान (गुजराती)	२०००
४६	विधि विज्ञान (हिन्दी)	२०००
४७	भगवान आत्मा (गुजरात+हिन्दी)	३५००
४८	सम्यक्ज्ञानदीपिका (गुजराती)	१०००
४९	सम्यक्ज्ञानदीपिका (हिन्दी)	१५००
५०	तत्त्वानुशीलन (गुजराती)	४०००
५१	तत्त्वानुशीलन (हिन्दी)	२०००
५२	बीजुं कांई शोध मा (गुजराती)	४०००

५३	दूसरा कुछ न खोज (हिन्दी)	२०००
५४	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (गुजराती)	२५००
५५	मुमुक्षुता आरोहण क्रम (हिन्दी)	३५००
५६	अमृत पत्र (गुजराती)	२०००
५७	अमृत पत्र (हिन्दी)	२५००
५८	परिभ्रमणना प्रत्याख्यान (गुजराती)	१५००
५९	परिभ्रमणके प्रत्याख्यान (हिन्दी)	२५००
६०	आत्मयोग (गुजराती)	१५००
६१	आत्मयोग (हिन्दी)	३०००
६२	अनुभव संजीवनी (गुजराती)	१०००
६३	अनुभव संजीवनी (हिन्दी)	१०००
६४	ज्ञानामृत (हिन्दी)	२५००
६५	वचनामृत रहस्य	१०००
६६	दिशा बोध (हिन्दी-गुजराती)	३५००
६७	कहान रत्न सरिता (हिन्दी-गुजराती)	२५००
६८	प्रवचन सुधा (भाग-१)	१४००
६९	कुटुम्ब प्रतिबंध (हिन्दी-गुजराती)	३५००
७०	सिद्धपद का सर्वश्रेष्ठ उपाय (हिन्दी-गुजराती)	३०००
७१	गुरु गिरा गौरव (हिन्दी-गुजराती)	३५००
७२	आत्मसिद्धि शास्त्र पर प्रवचन	७५०
७३	प्रवचन सुधा (भाग-२)	७५०
७४	समयसार दोहन	७५०
७५	गुरु गुण संभारणा	७५०
७६	सुविधिदर्शन	१०००
७७	समकितनुं बीज	१०००
७८	स्वरूपभावना	१०००
७९	प्रवचन सुधा (भाग-३)	१०००

८० प्रवचन सुधा (भाग-४)	१०००
८१ कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-१	१०००
८२ कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन भाग-२	१०००
८३ सुविधि दर्शन (हिन्दी)	१०००
८४ प्रवचन सुधा (भाग-५)	१०००
८५ द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-१)	१०००
८६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन (भाग-२)	१०००
८७ वचनामृत रहस्य (हिन्दी)	१०००
८८ प्रवचन सुधा (भाग-६)	१०००
८९ राज हृदय (भाग-१)	१५००
९० राज हृदय (भाग-२)	१५००
९१ अध्यात्मसुधा (भाग-१)	१०००
९२ अध्यात्मसुधा (भाग-२)	१०००
९३ गुरु गिरा गौरव (भाग-१)	१०००
९४ अध्यात्म सुधा (भाग-३)	१०००
९५ प्रवचन सुधा (भाग-७)	७५०
९६ प्रवचन सुधा (भाग-८)	७५०
९७ राज हृदय (भाग-३)	७५०
९८ मुक्तिनो मार्ग (गुजराती(	१०००
९९ प्रवचन नवनीत (भाग-३)	१०००
१०० प्रवचन नवनीत (भाग-४)	१०००
१०१ प्रवचन सुधा (भाग-९)	७५०
१०२ गुरु गिरा गौरव (भाग-२)	७५०
१०३ प्रवचन सुधा (भाग-२) हिन्दी	१०००
१०४ प्रवचन सुधा (भाग-१०) (गुजराती)	७५०
१०५ प्रवचन सुधा (भाग-११) (गुजराती)	७५०
१०६ धन्य आराधक (गुजराती)	७५०

पाठकोंकी नोंधके लिए